UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182196

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S13V Accession No. P.G. H91

Author साहू, किशोर

Title वीरकुणाल 1945.

This book should be returned on or before the date last marked below.

वीर कुणाल

वीर कुणाल

(सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास)

किशोर साहू

किशोर साहू की पुस्तकें

टेसू के फूल (कहानी-संग्रह)

वीर कुणाल (ऐतिहासिक उपन्यास)

अभिसार (गद्य-गीत-संग्रह) छप रही है

शादी या ढकोसला (एकांकी नाटक-संग्रह)

पहला संस्करण १९४७

[सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित]

मूल्य ४)

प्रकाशक : किताब महल, बम्बई

मुद्रक : शान्त अरोरा, रंगभूमि प्रिंटिंग प्रेस

१४१ शिवाजी पार्क, बम्बई



किशोर साहू

प्रीति को

प्रकाशक का वक्तव्य

किशोर साहू का "वीर कुणाल" चित्र शायद आपने देखा ही होगा। अगर आप में से किसी ने न भी देखा हो तो भी कम से कम उसका नाम तो अवश्य ही सुना होगा क्योंकि उस प्रख्यात चित्र का निर्माण और उसका उद्घाटन १९४५ की एक महत्वपूर्ण घटना थी। १ली दिसम्बर १९४५ का दिन हिंदी चलचित्र व्यवसाय के इतिहास में सुनहरी अक्षरों से लिखा जाएगा; केवल इस लिए नहीं कि उस महान ऐतिहासिक चित्र का निर्माण कर साहू ने अपने कला-चातुर्य से प्रेक्षकों को मोह लिया था बल्कि इस लिए भी कि चित्र का अखिल भारतीय उद्घाटन बम्बई शहर के प्रख्यात सिनेमागृह "नॉव्हेल्टी" में उस दिन कॉंग्रेस के धुरंधर, महारथी, सरदार वल्लभभाई पटेल के कर कमलों द्वारा हुआ था।

तब तक कॉंग्रेस और हमारे नेतागण चित्रपट के प्रति उदासीन ही रहे थे। "वीर कुणाल" के उद्घाटन के लिए जब साहू ने सरदार को राज़ी कर लिया तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उद्घाटन के अवसर पर चित्र व्यवसाय के और नगर के सभी प्रमुख व्यक्ति चित्रगृह में उपस्थित थे जहाँ पर सरदार पटेल का स्वागत करते हुए, उन्हें चित्र-व्यवसाय से, चित्र–कला से, चित्र–जगत से परिचित कराते हुए साहू ने चलचित्र व्यवसाय के लिए और अपने चित्र के लिए उनसे आशीर्वाद माँगा था।

साहू के वक्तव्य में एक पुकार थी, एक निवेदन था, एक ललकार थी, एक आवाहन था, एक माँग थी, एक अनुरोध था।

समस्त चित्र व्यवसाय की ओर से साहू ने जो हाथ फैलाया था सरदार ने काँग्रेस की ओर से उसे सहारा दिया, साहू के चित्र को आशीर्वाद दिया ।

सरदार पटेल का आशीर्वाद कारगर हुआ । "वीर कुणाल" चित्र अत्यंत लोकप्रिय हुआ और देश के समस्त आलोचकों ने मुक्तकंठ से उसकी और उसके लेखक, निर्माता, निर्देशक और कलाकार, किशोर साहू की प्रशंसा की । इतना ही नहीं, अखिल भारतीय फिल्म पत्रकार सम्मेलन ने "वीर कुणाल" को १९४५ का सर्वश्रेष्ठ चित्र घोषित किया । इससे पहले भी साहित्यिक–कलाकार साहू को बंगाल फिल्म–पत्रकार सम्मेलन की ओर से "राजा" चित्र की श्रेष्ठ कहानी के लिए मान मिल चुका था ।

हिंदी साहित्य में किशोर साहू का विशेष स्थान है । उनकी भाषा हमेशा भावपूर्ण, रसपूर्ण तो होती ही है परंतु उसमें एक अनोखी सादगी, एक अनोखा अपनत्व भी होता है । जनसाधारण की, रोज़ की बोल चाल की, खड़ी हिंदी के चार सुलभ शब्दों से बनाए हुए छोटे से वाक्य में चमत्कार पैदा करना साहू की अपनी अदा है । कहानी कहने का ढंग और 'टेकनिक' उनका बिलकुल अपना है । उनकी मौलिक, मनोवैज्ञानिक कहानियों के संग्रह, "टेसू के फूल" को जो सफलता मिली है वह सराहनीय है । शायद ही कोई हिंदी का पाठक ऐसा होगा जिसने उनकी "पुष्पा" कहानी न पढ़ी हो । १९४३ में जब उनकी "टेसू के फूल" का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था हिंदी संसार में एक खलबला मच गई थी । पिछले वर्ष हमारे यहाँ से "टेसू के फूल" का दूसरा संस्करण निकल कर समाप्त भी होने आया है और अब तीसरा संस्करण छपने जा रहा है आज के बहुतसे नए लेखक–और बहुत से पुराने भी–कहानी लेखन में साहू की भाषा, शैली, कथावस्तु, कथोपकथन और उनके पात्रों

की चोरी करने का सतत प्रयत्न किया करते हैं। यह सत्य फिर इस बात को सिद्ध करता है कि साहू की कलात्मक लेखनी का प्रभाव हिंदी साहित्य पर कितना अधिक पड़ा है। परंतु केवल चोरी या नक़ल करने से कोई कुछ नहीं हासिल कर सकता। उन नक़ालों के लेखन में, उनकी कहानियों में और किशोर साहू के लेखन और कहानियों में उतना ही अन्तर है, और सदा रहेगा, जितना कि उन नक़्क़ालों में और किशोर साहू में है। किशोर साहू अपने ढंग के, अपने रंग के बस अकेले ही हैं।

"वीर कुणाल" चित्र की महानता और उसकी लोकप्रियता में ही "वीर कुणाल" उपन्यास की नींव पड़ी है। वह चित्र भारत को हमारे सर्वश्रेष्ठ चित्र निर्माता—कलाकार, किशोर साहू, की ओर से एक कलात्मक और साहित्यिक भेंट थी। उसी सुंदर कृति का रूपांतर अब उन्होंने इस सुंदर उपन्यास में कर अपनी साहित्यिक प्रतिभा का फिर से परिचय दिया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठकों को यह उपन्यास भी अवश्य ही पसंद आएगा।

भूमिका

"वीर कुणाल" चित्र मैंने १९४५ में बनाया था। उस समय दूसरा महायुद्ध ज़ोरों से चल रहा था और धरती निर्दोषों और निर्बलों के रक्त से लाल हुई जा रही थी। विश्व-दमन की महत्वाकांक्षा रखने वाले देश आपस में भिड़ रहे थे। सत्य के नाम पर, देश के नाम पर, धर्म के नाम पर, प्रजा के कल्याणार्थ ही सब बड़े बड़े राष्ट्र एक दूसरे को नष्ट कर देने का बीड़ा उठाए हुए थे। जर्मन, अँग्रेज़, अमरीकन, और रूसी एक दूसरे के दमन के लिए भयानक से भयानक शस्त्र लिए मैदान में उतरे हुए थे। युरोपीय संस्कृति और सभ्यता का अनुकरण करने वाला हमारा एशियाई भाई, जापानी, भी अखाड़े में कूद ख़म ठोंक रहा था।

परन्तु इस महाभिड़ंत की योजना बड़ी महँगी पड़ी। भिड़ने वाले देश तो तबाह हो ही रहे थे, वे निर्दोष देश भी पिट रहे थे जिनका इस भिड़ंत से कोई सम्बन्ध न था। उन अभागे देशों में से एक हमारा हिन्दुस्तान भी था। हमारी गरदन अँग्रेज़ों के जबड़े में दबी हुई थी—हमें 'हाँ'; 'ना' कहने की मनाही थी। देश की पूर्वी सरहद पर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस हिंद को आज़ाद करने के लिए खड़े ललकार रहे थे, महात्मा गांधी, पं० नेहरू, सरदार पटेल, श्री जयप्रकाश नारायण आदि सभी नेता जेलों में ठूँस दिए गए थे; और अँग्रेज़ अपने कल्याण के लिए, अपनी सुरक्षा, अपने पेट और अपनी शान के लिए, हमारे असंख्य सैनिकों को इस महायुद्ध के विभिन्न मोरचों पर बड़ी निर्दयता पूर्वक कटा रहा था। ऐसे गर्म और कलुषित वायुमण्डल के

बीच बुद्ध कालीन इतिहास के पन्नों से, मौर्यों द्वारा पराकाष्ठा पर पहुँचाए गए उस स्वर्ण युग में दमकता हुआ सब से तेजस्वी नक्षत्र, महा-प्रतापी, परमबौद्ध, सम्राट अशोक और उनके वीर पुत्र, कुणाल, को उज्वल जीवनियों से सम्बन्ध रखने वाली सारगर्भित घटनाओं को बटोर कर, श्रृंखलाबद्ध कर, चित्रित करने के लिए मन सहज ही उतावला हो उठा।

३२२ ई० पू० जब से तेजस्वी राजकुमार चंद्रगुप्त ने गुरू चाणक्य की सहायता से, मगधपति नंद का नाश कर, पाटलिपुत्र पर अपना आधिपत्य जमा कर, मगध को और तुरन्त ही दूसरे प्रांतों को अपने आधीन कर मौर्य वंश की नींव डाली, त्रस्त और विच्छिन्न भारत ने संतोष की एक साँस ली और भारत के गगन-मण्डल पर सुख, शांति, उन्नति और ऐश्वर्य का सूर्य उत्तरोत्तर दैदीप्यमान होता गया। मौर्य कालीन भारत के ऐश्वर्य की सच्ची और पूरी पूरी झाँकी हमें अँग्रेजों के लिखे हुए इतिहास में नहीं मिलती। हमें बौद्ध और जैनियों के धार्मिक ग्रंथों का निरीक्षण भी करना पड़ता है। एक प्रमुख ग्रंथ महान राज-नीतिज्ञ चाणक्य का लिखा हुआ अर्थशास्त्र भी है और जो उन्हीं के दूसरे नाम से प्रख्यात है; यानी यह ग्रन्थ "कौटिल्य का अर्थशास्त्र" कहलाता है। हर हिंदवासी से, जिसे अपने देश और अपनी संस्कृति पर कुछ भी अभिमान है, मेरा अनुरोध है कि वह एक बार मौर्यवंश का इतिहास पढ़ते समय "कौटिल्य का अर्थशास्त्र" अवश्य पढ़े। राज-नीति की असंख्य गुत्थियों को इस ग्रंथ में सुलझाया गया है, राजा और प्रजा के धर्म तथा नीति को व्यवस्थित रूप से इस ग्रंथ में सूत्र बद्ध करके रखा गया है। इसके पढ़ने से हमें ज्ञात होता है कि मौर्य शासकों की सफलता और उन्नति की कुन्जी प्रतिभाशाली ब्राह्मण, चाणक्य, के मस्तिष्क की उपज उनका यही अर्थशास्त्र था।

अंग्रेज़ इतिहासकार भी इस बात को मानते हैं कि मौर्यों का शासन-विधान आज से दो हज़ार वर्ष पहले भी अकबर के शासन-विधान से कहीं बढ़िया और परिपूर्ण था, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि अकबर का शासन–विधान भी भारतीय पुरातन ग्रंथों के आधार पर ही पण्डितों, विद्वानों द्वारा तैयार किया गया था।

अपने चित्र का प्रधान पात्र मौर्यवंशी विभूतियों में से चंद्रगुप्त, बिंदुसार या अशोक को न बनाते कुणाल को बनाने में मेरा एक अभिप्राय था। मौर्य वंश की नींव व उन्नति का इतिहास सब जानते हैं; परन्तु मौर्यशासन, मौर्य ऐश्वर्य पराकाष्ठा पर अशोक के समय में ही पहुँचा और अशोक के बाद ही मौर्यों की क्षति आरंभ हो गई। सम्राट अशोक ने २७३ ई० पू० से लेकर २३२ ई० पू० तक यानी लगभग चालीस वर्ष तक समस्त भारत पर राज्य किया। सिंहासन पर बैठने के कुछ ही वर्ष बाद, २६१ ई० पू० में सम्राट अशोकवर्धन ने कलिंग पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की और कलिंग को मौर्य साम्राज्य का प्रांत बना लिया। परन्तु इस विजय से सम्राट अशोक का दिल टूट गया। उन्हें बड़ा दुख और पश्चाताप हुआ क्योंकि, उन्हीं के एक शिला–लेख के अनुसार, कलिंग–युद्ध में डेढ़ लाख आदमी बंदी बना कर ले जाए गए थे, एक लाख युद्ध में मारे गए थे और इसकी कई गुनी संख्या में लोग या तो मर गए या नष्ट हो गए थे। दया और धर्म की ओर अशोक का मन खिंचने लगा और वे बौद्ध हो गए। कलिंग युद्ध की घटना इस प्रकार अशोक के जीवन में एक विशेष घटना बन गई और वह एक विशेष घटना बन गई विश्व के इतिहास में भी। चंद्रगुप्त ने तो भारत के भूभाग पर ही राज्य किया परन्तु अशोक महान ने भारतीय तथा भारत से बाहर के देशों में रहने वाले लोगों के मन को भी जीत लिया। एशिया, युरोप और अफ़रीका मे बौद्ध संघ के भिक्षुकों

को भेज कर उनके द्वारा उन प्रदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार कराने का सारा श्रेय स्वयं सम्राट अशोक को है। महात्मा बुद्ध का बताया हुआ कर्म और अहिंसा द्वारा मोक्ष प्राप्ति का पाठ लंका, ब्रह्मदेश, स्याम, तिब्बत, चीन और जापान तक अशोक ने ही पहुँचाया। लंका में बौद्ध संघ की स्थापना और बौद्ध धर्म का प्रचार महाराज अशोक के भाई, महेन्द्र, और उनकी बहन, संघमित्रा, ने वहाँ स्वयं जाकर किया।

सम्राट अशोक के प्रकाशित अनेक शिला-लेखों ही से हमें उनकी जीवनी का वृत्तान्त ज्ञात होता है। अशोक कालीन स्तूप और स्तम्भ द्वारा जो सांचि, सारनाथ, भिलसा आदि स्थानों पर देखने को मिलते हैं, हमें मौर्य कालीन शिल्प-कला और ऐश्वर्य की एक मार्मिक झाँकी उपलब्ध होती है।

बड़े आश्चर्य की बात मुझे यह लगी कि अशोक ने समस्त भारत पर चालीस वर्षों तक एक अहिंसावादी बौद्ध के रूप में राज्य किया और उनके साम्राज्य से एक प्रांत भी बाहर न निकला। वह कौनसा रहस्य था, वह कौनसी शक्ति थी महाराज अशोक में जिसके कारण काश्मीर से लेकर मैसूर तक और अफ़ग़ानिस्तान से लेकर बंगाल तक वे भारत को अखंड बनाए रखे और अन्त तक उस अखण्ड भारत पर उनका आधिपत्य स्थित रहा? अशोक महान के पास कोई विषैली वायु या ऐटम-बॉम्ब न था। उनके शासन के आधार-स्तम्भ की नींव न्याय और धर्म पर थी तभी तो आज तक पृथ्वी पर उनका नाम श्रद्धा और प्रेमपूर्वक लिया जाता है। सारनाथ में पाए गए अशोक-स्तम्भ पर बने हुए धर्म-चक्र में ही अशोक की अलौकिक प्रतिभा प्रतिबिंबित है।

अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मौर्य वंश के पतन का कारण क्या हुआ। इतिहास कहता है कि अशोक के बाद उनके राज्य के खंड खंड होगए। पूर्वी खंड पर उनके पोते, दशरथ, ने और पश्चिमी

खंड पर उनके दूसरे पोते (कुणाल-पुत्र), सम्प्रति, ने राज्य किया। क्या कारण है कि मौर्य सिंहासन पर अशोक के बाद उनका पुत्र न बैठा। इतिहास यहाँ चुप है। अशोक के पुत्रों में तीवर, कुणाल और जलौक का उल्लेख अवश्य पाया जाता है; परन्तु वे सब अशोक की अवधि में विभिन्न प्रांतों के उपराजा मात्र रहे, कोई भी सम्राट न बना। सम्भव है वे लोग या तो अयोग्य थे या अशोक की उन पर कृपा न थी क्योंकि अशोक को उन्होंने अप्रसन्न कर दिया होगा। परन्तु इतिहास के अनुसार और जैनियों के धर्म-ग्रन्थों के अनुसार भी अशोक का पोता, सम्प्रति, जैन धर्म का प्रतिपालक था, उज्जैन उसकी राजधानी थी और अजमेर, राजपूताना और काठियावाड़ में आज भी उसके बनाए हुए असंख्य जैन-मंदिर पाए जाते हैं। जैनियों की धर्म पुस्तकों में सम्प्रति के पिता, कुणाल, का उल्लेख 'अन्धकुमार' के नाम से हुआ है, जिससे हमें ज्ञात होता है कि अशोक-पुत्र, कुणाल, नेत्र विहीन था। क्या यह कुणाल अन्धा ही पैदा हुआ था या उसकी आँखें बाद में जाती रहीं? इतिहास यहाँ फिर मौन है। परन्तु वीर कुणाल की सुन्दर आँखों के और उन सुन्दर आँखों के नष्ट हो जाने के रहस्य पर जैनियों की पुस्तकों के पन्ने रंगे पड़े हैं। भारत के कोने-कोने में पौराणिक गाथाएँ व किंवदन्तियाँ आज भी प्रचलित हैं जिनमें सम्राट अशोक के प्रिय पुत्र, कुणाल, की सुन्दर आँखों को ज्योति विहीन करने की वही करुण कहानी है। इतिहासकार इन किंवदंतियों को इतिहास मानने के लिए तैयार नहीं परन्तु वे उनकी अवज्ञा करने के लिए भी तैयार नहीं हैं।

कहानी की सामग्री मैंने जैनियों के ग्रन्थों और किंवदन्तियों से ही बटोर कर, कुछ परिवर्तन के साथ, इतिहास की पृष्ठभूमि पर इस ढंग से जड़ दी है कि जिससे चित्र देख कर, मेरा ऐसा विश्वास है, प्रेक्षकों

का मनोरंजन तो हुआ ही परन्तु उन्हें सीख भी मिली। सम्राट अशोक जैसे न्यायी, धर्मज्ञ, धर्मवीर से भी वृद्धावस्था में एक भूल होगई। माँस खाना, शिकार खेलना, किसी भी प्रकार की हिंसा करना तो उन्होंने छोड़ दिया था परन्तु कामेन्द्रिय को वे भली भाँति न जीत पाए थे ऐसा प्रतीत होता है, तभी तो वृद्धावस्था में उन्होंने तिष्यरक्षिता नामक एक नवयुवती से, उसके रूप पर रीझ कर, ब्याह कर लिया। यही तिष्यरक्षिता मौर्य साम्राज्य के नाश का कारण हुई। इस कहानी द्वारा मैंने अशोक महान के समय का अखंड भारत और भारतीय संस्कृति व ऐश्वर्य की सुनहरी आभा तो दिखलाई ही है परंतु यह भी प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार, समस्त साम्राज्य के राई-रत्ती भेदों के जानने वाले सम्राट अशोक अपने ही महलों में, एक रूपवती स्त्री के मोहजाल में फँसकर, भारत के भविष्य—अपने प्रिय पुत्र, कुणाल, के सर्वनाश का व अपने दादा, चंद्रगुप्त मौर्य, द्वारा स्थापित उस अखंड मौर्य साम्राज्य की अवनति का कारण स्वयं ही थे। "वीर कुणाल" की कहानी बस यही है। कहानी को चरमबिंदु तक पहुँचाने के लिए, कहानी का तात्पर्य दर्शाने के लिए, महात्मा गांधी के निर्दिष्ट सच्चे रास्तों पर लोगों का विश्वास दृढ़ करने के लिए, मुझे जगह जगह इतिहास के मौन पर अपने तर्क द्वारा पुल बांधने पड़े, किंवदंतियों और धर्म-पुस्तकों की गाथाओं की विषमता पर मुझे अपने काल्पनिक दृश्यों, घटनाओं और पात्रों का निर्माण करना पड़ा। यह बात मैं दोहरा रहा हूँ कि "वीर कुणाल" की कहानी यद्यपि इतिहास न भी हो, ऐतिहासिक वह अवश्य है और मैंने इतिहास की उस अस्पष्ट और टूटी हुई शृंखला को, जिसमें कुणाल की जीवनी बद्ध है, अपने तर्क व अपनी कल्पना से निखार कर जोड़ देने का प्रयत्न किया है।

चित्र "वीर कुणाल" की कहानी के लिए ऐतिहासिक व धर्म

ग्रन्थों से सामग्री जुटाने में, राजपूताना, काठियावाड़, पटना, सारनाथ आदि स्थानों के उसी अन्वेशन कार्य अपने भ्रमण में मुझे अपनी पत्नि, प्रीति, से और रमेश गुप्ता और सुशील साहू से बड़ी सहायता मिली। चित्र के निर्माण में, उसे सफलीभूत बनाने में मैं अपनी समस्त सहायक मण्डली का आभारी हूँ।

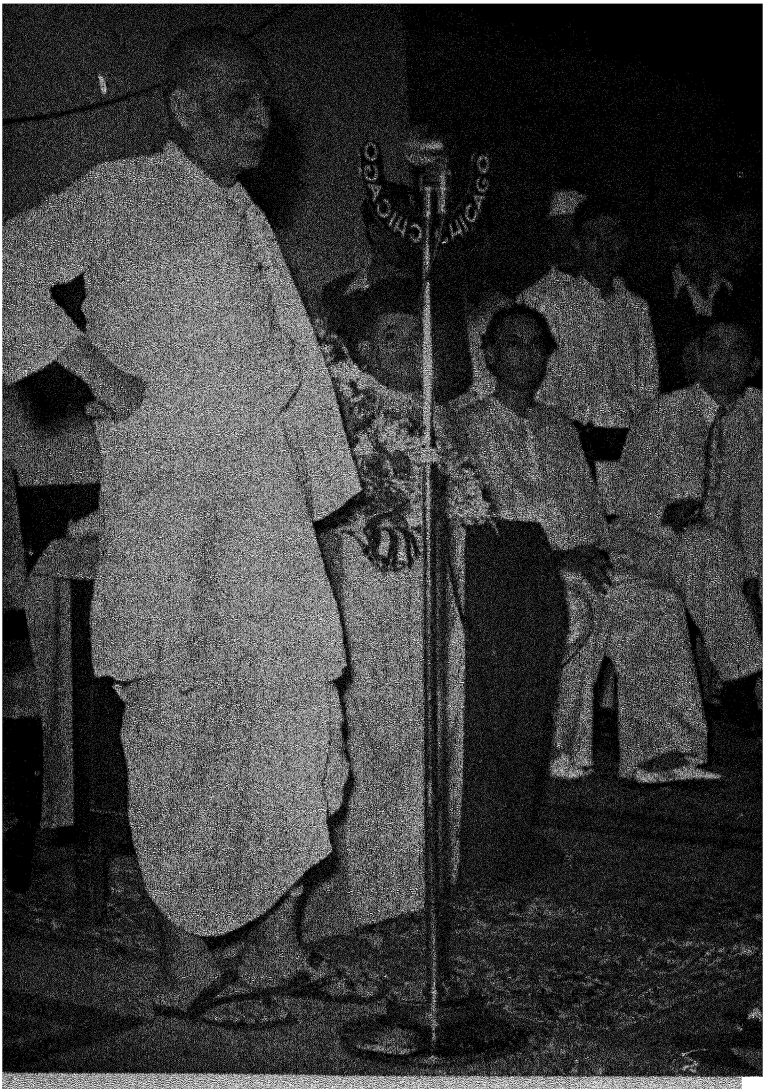
अब उसी "वीर कुणाल" चित्र का रूपान्तर मैंने इस उपन्यास में किया है। मैं आशा करता हूँ कि जहाँ मेरा वह चित्र न पहुँचा होगा वहाँ भी यह उपन्यास अवश्य पहुँचेगा।

बम्बई
अक्टूबर, १९४७

किशोर साहू



वीर कुणाल
(किशोर साहू)



सरदार वल्लभ भाई पटेल, साहू के "वीर कुणाल" चित्र का उद्घाटन करते समय

पहला परिच्छेद

गोधूलि की धुँधली, सुनहरी आभा में तक्षशिला से पाटलिपुत्र को आने वाली सड़क के दूसरे छोर पर धूल ठीक इस प्रकार उठ रही थी मानो किसी जाग्रत ज्वालामुखी के उदर से धुएँ के उष्ण, शतरंगी बादल उठ रहे हों ! विशाल पेड़ों के बीच, सोहागन की माँग की तरह, स्थिर पड़ी हुई सड़क पर कोई घुड़सवार सरपट चला आ रहा था।

सड़क के किनारे, पथिकों के विश्राम के लिए बनी हुई चौकी में दीप जल चुका था। तीव्र होती हुई घोड़े की टाप सुनकर नवागन्तुक का स्वागत करने के लिए प्रहरी बाहर निकला। पसीने से लथपथ घोड़ा हाँफता हुआ आकर चौकी के द्वार पर रुक गया। घोड़े की पछाड़ से बँधे हुए धूल के शतरंगी बादल उसके पैरों में यकायक लोप होगए।

"पाटलिपुत्र अब यहाँ से कितनी दूर होगा, प्रहरी ?" पगड़ी के एक छोर से माथे का पसीना पोंछते हुए सवार ने पूछा।

"गंगा के तट पर आकर गंगा का पता पूछते हो !" प्रहरी ने उत्तर दिया। "देखते नहीं वह अलकापुरी-सा आलोक, वे भव्य मंदिर, स्वर्ग तक ऊँची उड़ने वाली वे साम्राज्य विजयिनी मौर्य पताकाएँ ? पाटलिपुत्र किसी परिचय का भूखा नहीं, पथिक। तुम कहाँ से आरहे हो ?"

पथिक ने दृष्टि डाली। दूर सोन नदी के किनारे बसे हुए पाटलिपुत्र नगर के असंख्य घरों के दीप जगमगा रहे थे। उत्तर में उसने कहा : "काशी से।"

"बड़ी दूर से आ रहे हो ! तो फिर जल्दी जाओ, नगर के द्वार बन्द हो जाएँगे।"

पथिक द्वार बन्द होने की आशंका से सिहर उठा। तो क्या रात उसे नगर के बाहर ही, यहाँ इस चौकी में, बितानी पड़ेगी ? घोड़े को उसने एड़ मारी और प्रहरी को राम-राम करता हुआ नगर की ओर वह उड़ पड़ा।

हवा से बात करते हुए घोड़े की पीठ पर से उसने देखा सड़क सुनसान पड़ी हुई है। सूर्यास्त के साथ-साथ नगर को वापस लौटे हुए ढोरों के झुण्ड सड़क की धूल में अपने खुरों के निशान छोड़ गए हैं। एक ओर सोन नदी के स्वच्छ जल पर तैर रही नौकाओं में मछुए गीत गा रहे हैं। दूसरी ओर पथिक ने देखा नगर की चारदीवारी के बाहर-बाहर एक गहरी खाई खुदी हुई है। इस खाई के ऊपर लकड़ी का एक पुल बना हुआ है जिसके परले सिरे पर एक भव्य द्वार खड़ा हुआ है। पथिक ने पाटलिपुत्र की महिमा पहले से ही सुन रखी थी। गोलाकार, गहरी खाई तथा काठ की बनी हुई—६४ द्वार वाली—चारदीवारी के बीच मौर्यों की पुण्यशीला राजधानी, पाटलिपुत्र के सुरक्षित होने की बात आज वह प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख रहा है। द्वार के ऊपर बनी हुई छत पर चोब के साथ-साथ भेरी बज उठी और द्वार के बड़े-बड़े पट सहसा चर्र-चूँ करते हुए बन्द होने लगे। पथिक की जान सूख गई। बाग ढीली कर उसने ज़ोर की एड़ मारी। द्वार के पट ठेलते हुए दानव-से चार द्वारपालों के बीच से होता हुआ घोड़ा द्वार के अन्दर प्रवेश कर गया। द्वारपाल सहम कर एक क्षण पीछे हट खड़े हुए, परन्तु नवागन्तुक की वेशभूषा से वे पहचान गए कि यह पथिक काशी के आसपास का, कोई मौर्य साम्राज्य का ही, नागरिक है। चर्र-चूँ करते हुए द्वार के पट फिर भिड़ाए जाने लगे।

पाटलिपुत्र की गलियों की चकाचौंध में पथिक और पथिक का घोड़ा दोनों ही बह गए। लाल, काले और सफ़ेद पत्थरों को विभिन्न आकार में काट कर बनाई हुई सड़कें पाटलिपुत्र की विशेषता थीं। सड़कों और गलियों के दोनों ओर ऊँची-ऊँची अटारियों में लोग आनंद मना रहे थे। किसी घर के आँगन में पथिक ने देखा मादक शृंगार के हिंडोले में बैठे झूलते हुए युवकों को युवतियाँ झोंके दे रही थीं। छपरी में बैठे हुए बड़े-बूढ़े जीवन की साँझ में हँसी खोज रहे थे। छप्पन प्रकार के पटरस पकवान, मिष्टान्न से भरी पूरी इस महानगरी के हलवाई झूमझूम कर मिठाइयाँ बेच रहे थे। फूल की हाट में कोई मालन अपने सुरीले कण्ठ से चहक रही थी : "लाई हूँ फूलों के हार, लोगे मोल, लोगे मोल—जूथिका, हरसिंगार, चंपक, जवाकुसुम, माधवी, रजनी गंधा—" रंग-बिरंगे असंख्य गजरों के बीच बैठी हुई मालन पथिक की ओर देखकर मुस्कुरा पड़ी। पथिक निहाल होगया। अँगोछे की गाँठ से एक मुद्रा निकाल कर उसने मालन की ओर फेंकी। पाटलिपुत्र की धरती से उगे हुए पुष्पों का एक बड़ा-सा सुवासित गजरा पथिक के गले में उतर आया।

सम्राट अशोक की महानगरी फूलों की तरह ही महक रही थी। जिधर से पथिक निकलता राग, रंग, आनन्द और शान्ति का दरिया उमड़ता हुआ पाता। पाटलिपुत्र की इस झाँकी में उसने दो आँखें भी चमकती हुई देखीं जो तुरन्त ही भीड़ में लोप होगईं।

बरगद के नीचे बुद्धदेव की बड़ी भारी मूर्ति बनी हुई थी जहाँ विद्वान् पण्डित प्रजा को परलोक चिंतन करा रहे थे। पास ही कुछ राज-कर्मचारी निर्धनों, असहायों को कपड़ा-लत्ता और सदाव्रत बाँट रहे थे। सम्राट की आज्ञा थी कि उनके राज्य में कोई भी मनुष्य भूखा न सोने पाए। शंख-नादादि के साथ पुजारियों ने लक्ष्मीनारायण की

अन्तिम झलक दिखा कर सुनहरी परदा खींच दिया। पथिक ने तृप्त हृदय से सोचा : 'देवताओं के प्रिय सम्राट अशोक की नगरी में भगवान भी सुख से सोते हैं ! क्या स्वर्ग इससे भी बढ़कर सुन्दर हो सकता है ?'

सहसा किसी अबला की चीत्कार से वह चौंक पड़ा। "रक्षा ! रक्षा करो ! दुष्ट मेरा सतीत्व—" सामने की सकरी, अन्धेरी गली में एक युवती भागी चली आरही थी। पीछे-पीछे कोई दुष्ट लपक रहा था। पथिक अपना घोड़ा लिए चट पास के छप्पर की ओट में दुबक गया। उस उद्दंड युवक ने अबला को आ पकड़ा और उस निर्जन गली में झकझोर होने लगी। इसी समय दूर अन्धकार में से किसी ने मेघ-गर्जना-सी ध्वनि में चेतावनी दी : "सावधान !" दुष्ट युवक ने चौंक कर अन्धकार की ओर मुँह फेरा। धुँधली-सी, काली पोशाक में, एक मनुष्याकृति आगे बढ़ रही थी। "कदाचित भूल गए हो कि यह सम्राट अशोक की राजधानी है !"

युवक का हाथ अबला की बाँह से हट कर तलवार की मूठ पर आ जमा। "होगी," उसने कहा। "हट जाओ सामने से।"

काली-सी, धुँधली-सी वह मनुष्याकृति युवक और अबला के ठीक सामने आकर खड़ी होगई और दो आँखें काले वस्त्रों से ढँके हुए चेहरे के बीच चमक उठीं। "हमें सामने से हटाने की शक्ति तो देवराज इन्द्र में भी नहीं।" युवक पर एक धूँसा पड़ा और वह पछाड़ खाता हुआ दूर जा गिरा। "अबला की लाज लूटने वाले दुष्टों को दण्ड देने के लिए हमारी तलवार मृत्यु की सेज बिछाती है। सावधान !" काली पोशाक ने ललकारा।

युवक तलवार खींच कर उठ खड़ा हुआ। काली पोशाक भी नंगी तलवार लिए आगे बढ़ी। अबला साँस रोके देखती रही। छप्पर की ओट में दुबका पथिक काँपने लगा; और, गली के सघन अन्धकार में,

दो पैनी तलवारें झनझना उठीं। चार, छः भयानक हाथ होने के बाद दुष्ट युवक की तलवार धरती पर जा गिरी और काले वस्त्र वाली मनुष्याकृति ने युवक की छाती पर अपनी तलवार की नोक रख मुँह पर से परदा हटाते हुए कहा : "चन्द्रगुप्त मौर्य के वंशज को धोखा देना खेल नहीं, यह समझ लिया !" चेहरे का लावण्य आँखों के तेज की तरह ही निखर रहा था।

"सम्राट-पुत्र कुणाल !" युवक के काँपते हुए अधरों से निकल पड़ा। उसके माथे पर बारीक-बारीक बूँदें छलछला आईं।

अबला को सहारा मिला। उसके लड़खड़ाते पैर स्थिर होगए।

'तो क्या यही है कुणाल ?' पथिक ने सोचा। 'वीर कुणाल ?'

"हाँ, कुणाल। मौर्यों की पुण्यशीला राजधानी से अन्याय के कलंक को मिटाने वाला कुणाल," काले वस्त्र पहने, गुप्तचर के रूप में, अशोक-पुत्र कुणाल ने उत्तर दिया और अपनी बाँह से लटके हुए रत्न-जटित छोटे-से शंख में उसने ज़ोर से फूँक मारी। शंख-ध्वनि सुनते ही कुछ सशस्त्र सैनिकों ने गली में प्रवेश किया। युवक काँपता हुआ दया की भीख माँगने लगा।

"पापी को दया ! साँप को दूध नहीं पिलाया जाता," कुणाल ने कहा और फिर सैनिकों की ओर देखकर बोला : "बन्दी करो इस पिशाच को।"

सिपाहियों ने युवक के हाथों में हथकड़ी पहना दी। अबला कुमार के चरणों में जा गिरी और फूट-फूट कर रोने लगी।

कुणाल ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा : "डरो मत। तुम कौन हो, देवी ? क्या बात है ?"

"यह नीच कुमारसेन मेरा पड़ोसी है," अबला ने सिसकते हुए कहा। "धन का लोभ दिखाकर पापी मेरी लाज लूटना चाहता था।

हे भगवान, मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते ! मैंने कौनसे पाप किए थे, प्रभो ?''

"तुमने कोई पाप नहीं किया, देवी।'' सहारा देकर कुणाल ने अबला को उठाकर खड़ा किया।

"पाप की हवा में सतियों का आँचल उड़ाने का दम नहीं। भारत भूमि तुम जैसी देवियों से ही पवित्र है।'' फिर सैनिकों से बोला : "हमारी आज्ञा से इन्हें राज्य का आश्रय मिल रहा है और बन्दी न्याय के आधीन किया जाय। आवश्यकता पड़ने पर हमें साक्षी में बुलाया जा सकता है।''

उसी समय गली के नुक्कड़ पर किसी के गिड़गिड़ाने की आवाज़ ने कुणाल का ध्यान आकर्षित किया। अभी-अभी शाम को नगर में आए हुए घुड़सवार को कुछ सैनिकों ने पकड़ लिया था और वह उनसे छोड़ देने की विनती कर रहा था। कुणाल को देख वह गिड़गिड़ाने लगा : "मैंने कोई अपराध नहीं किया, प्रभो ! मेरी रक्षा हो। मैं परदेसी हूँ। आज साँझ को ही पाटलिपुत्र आया हूँ।''

'तब रात में इस तरह भटकने का कारण ?'' कुणाल ने शंकित नेत्रों से घूरते हुए पूछा। "अतिथिशाला में क्यों नहीं गए ?''

"पाटलिपुत्र की चमक-दमक मुझे चारों ओर भटकाते-भटकाते यहाँ ले आई। बस यही मेरा अपराध है, प्रभो।''

कुणाल को युवक की बातों से सन्तोष नहीं हुआ। सैनिकों से मुक्त करा उसे अपने साथ चलने का सम्राट-पुत्र ने आदेश दिया। पथिक, सहमा हुआ, कुमार के घोड़े के पीछे अपना घोड़ा बढ़ाए चलने लगा।

"तुम तक्षशिला से आरहे हो ?'' कुणाल ने प्रश्न किया।

पथिक चौंक पड़ा। परन्तु तुरन्त ही सँभल कर उसने उत्तर दिया : "नहीं, प्रभो, काशी से।''

कुणाल मुस्कुराया। "युवक, अपनी मातृभूमि को छिपाना सहज नहीं। तुम्हारा पहनावा काशी का अवश्य है, परन्तु तुम तक्षशिला के निवासी हो। सच कहो ?"

"सच कहता हूँ, प्रभो। मैं मौर्य साम्राज्य की प्रजा हूँ। काशी और तक्षशिला दोनों ही आपके साम्राज्य में हैं।"

सम्राट-पुत्र कुणाल की धारणा, उसका अनुमान, उसकी शंका सत्य प्रतीत हुई। अपने विशाल नेत्रों से पथिक को आँकते हुए उसने धीरे से कहा : "गुप्तचर हो !"

पथिक आश्चर्य से भयभीत हो, हाथ जोड़ता हुआ, निवेदन करने लगा : "प्रभो सब जानते हैं। तक्षशिला से सेनापति भृगुदत्त ने मुझे महामंत्री सोमदेव की सेवा में भेजा है।"

"तुम्हारा नाम ?"

"शक्तिभद्र।"

"कोई सन्देशा लाए हो ?"

"जी हाँ, अन्नदाता।"

"आओ हमारे साथ। हम स्वयं तुम्हें कल महामंत्री सोमदेव की सेवा में ले चलेंगे।"

शक्तिभद्र प्रसन्न चित्त कुमार के पीछे-पीछे चलने लगा।

नगर की रक्षा का प्रबन्ध देखने के बाद, शक्ति भद्र के लिए आराम से रहने की व्यवस्था कर कुणाल ने अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया। दूर से उसने देखा, उसकी पत्नि, कांचनमाला और पुत्र, सम्प्रति में बड़े लाड़-प्यार की बातें हो रही हैं। द्वार पर खड़ी पहरा देती हुई दासी ने राजबधु को राजकुमार का आगमन जताना चाहा, परन्तु कुमार से चुप रहने का संकेत पा वह मुस्कुराती हुई, नंगी तलवार थामे, सरक कर खड़ी होगई और

कभी कांचन को व कभी कुणाल को देखने लगी। अपने सात वर्ष के सुन्दर पुत्र की बड़ी-बड़ी डींगें द्वार पर खड़ा हुआ कुणाल सानन्द सुनने लगा।

"तो तू कितने देश जीतेगा, सम्प्रति ?"

"सारा संसार जीतूँगा, माँ।"

"सारा संसार जीतकर फिर तू क्या करेगा ?"

"सम्राट बनूँगा। राजमुकुट पहनूँगा। जैसे दादा जी पहनते हैं। और तुम्हारे लिए मैं एक महल बनवा दूँगा। सोने का बनवा दूँगा, माँ।"

कांचन ने आनन्द विभोर होते हुए पूछा : "और यदि कोई शत्रु मुझ से छीन ले तो ?"

सम्प्रति का हाथ कमर से लटकी हुई तलवार की मूठ पर पहुँचा। "तो मैं उसे मार डालूँगा," उसने कहा।

"यदि वह तुझे हरा दे ?"

"मुझे कोई नहीं हरा सकता। मैं वीर कुणाल का पुत्र हूँ।"

द्वार पर खड़ा हुआ कुणाल अपने नन्हे-से पुत्र के वीरतापूर्ण भाव सुनकर पुलकित हो उठा।

"और जो तेरे पिता जी ही मुझसे छीन लें तो ?" कांचन ने पूछा।

"तो मैं उनसे भी लड़ूँगा।"

कुणाल ने हँसते हुए अन्दर प्रवेश किया। "शाबाश, बेटा, शाबाश !" उसने कहा। "शेरों के कुल में शेर ही पैदा होते हैं।"

सम्प्रति और कांचन दोनों कुणाल के इस अकस्मात् आगमन से चौंक पड़े। "अरे आप !" कांचन ने अचरज प्रगट किया।

"देवी," कुणाल बनावटी ढंग पर बोला, "हम तुम्हारे बेटे से लड़ेंगे।"

कांचन मुस्कुराई। वह भी झूठा अभिनय करती हुई पुत्र से बोली : "सम्प्रति, युद्ध के लिए सामने आने पर पिता से भी लड़ना क्षत्रिय बालक का धर्म है।"

सम्प्रति की छोटी-सी पैनी तलवार म्यान के बाहर होगई। "हाँ, माँ," उसने दृढ़तापूर्वक कहा। "मैं पिता जी से लड़ूँगा।"

"सम्प्रति!" अपनी तलवार झनझनाता हुआ कुणाल गर्ज उठा। "हम मौर्य-कुल-सूर्य सम्राट अशोक के पुत्र हैं। तुम हमसे लड़ोगे?"

"हम भी मौर्य-कुल-वीर कुणाल के पुत्र हैं। आप हमसे लड़ेंगे तो हम आपको हरा देंगे।

कुणाल ने आनन्द से चकित हो सम्प्रति की ओर देखा। वीर-पत्नि कांचन की छाती पुत्र का साहस देख फूली नहीं समा रही थी। युवक पिता ने लपक कर पुत्र को उठा छाती से लगाते हुए कहा : "हमारे कुल में हारना किसी ने नहीं सीखा, बेटा।"

अपनी विजय पर प्रसन्न हो सम्प्रति कहने लगा : "आप हार गए! हार गए! हार गए!"

कांचन ने पुत्र की पीठ ठोंकी। "हाँ, बेटा, तू जीत गया। बड़ा वीर है मेरा लाल!"

"बड़ा अच्छा न्याय किया!" स्त्री को व्यंगात्मक दृष्टि से ताकता हुआ कुणाल बोला। "आज मेरी माँ होती तो वह मेरी जय मनाती!" फिर पुत्र के माथे को चूमता हुआ बोला : "अच्छा, बेटा, जाओ, अब सो जाओ। मल्लिका—"

दासी मल्लिका आगे बढ़ती हुई बोली : "आओ, कुमार," और सम्प्रति को लेकर वह चली गई।

पति को छेड़ती हुई कांचन बोली : "मेरा पुत्र आपसे कम बलवान नहीं।"

कुणाल की बड़ी-बड़ी, सुन्दर, चपल आँखें मुस्कुराने लगीं। "उसकी माँ से ही हम हारते हैं," उसने स्त्री का हाथ अपने हाथ में लेते हुए उत्तर दिया।

कांचन लजा कर हाथ छुड़ाने लगी। सहसा उसकी दृष्टि पति के हाथ पर लगे हुए घाव पर गई। वह चौंक कर घबराहट भरे स्वर में बोली : "अरे ! यह घाव कैसे लगा ?"

"खरोंच लग गई है। नगर में कोई दुष्ट एक अबला पर बलात्कार करना चाहता था। उसी को बचाते हुए लग गई होगी।"

"हमारी राजधानी में भी ऐसे दुष्ट हैं ?"

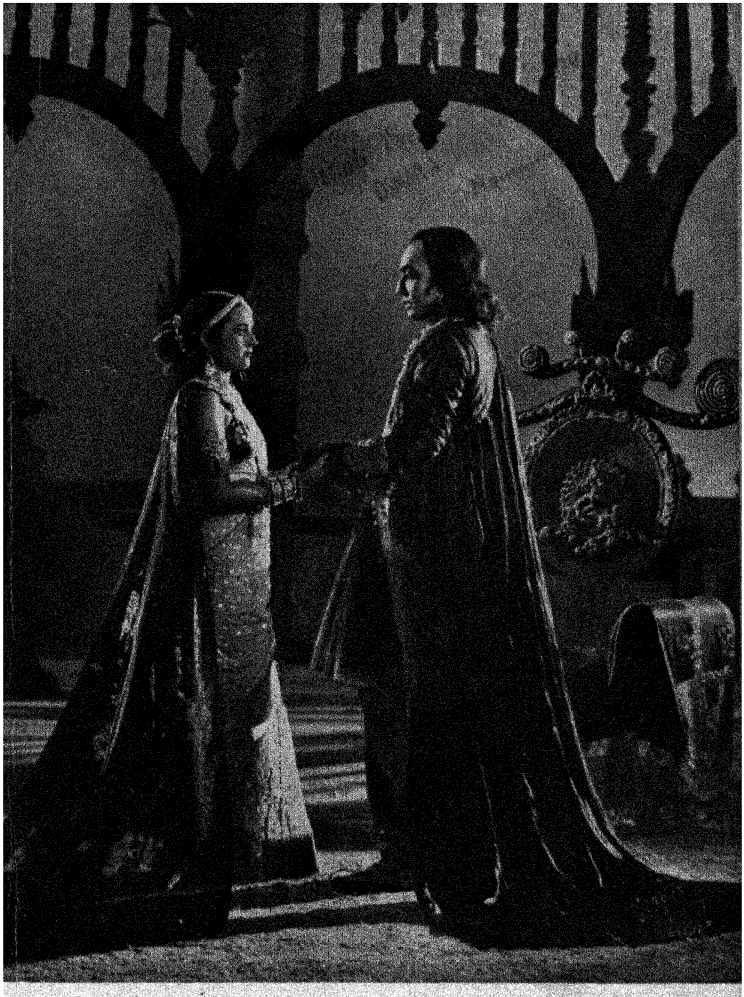
"दुष्ट संसार में कहाँ नहीं हैं, कांचन ? दुष्ट का नाश करने के लिए राजाओं को सदा सावधान रहना चाहिए।"

"परन्तु इन छोटी-छोटी बातों में आप क्यों--

"इन छोटी-छोटी बातों में ही प्रजा का दुख-सुख रहता है, कांचन," बात काटते हुए कुणाल ने स्त्री को समझाया। "हम प्रजा के सेवक हैं; और सम्राट उसके सबसे बड़े सेवक हैं। ये सारे भोग, विलास, ये वैभव हमारा नहीं, प्रजा ने हमें दिया है--हमारी सेवाओं के उपहार में.....मौज मनाने के लिए नहीं।

कांचन पति के पास बैठ गई और बड़े अनुराग से घाव वाले हाथ पर जमी हुई रक्त की सूखी बूँदें अपने उत्तरीय के छोर से पोंछने लगी।

दूसरे दिन प्रातःकाल महामंत्री सोमदेव से सम्राट-पुत्र कुणाल ने तक्षशिला के गुप्तचर शक्तिभद्र का परिचय कराया। निशानी के तौर पर लाई हुई अँगूठी पहचानते हुए महामंत्री गम्भीर हो गए। आसन से उठकर वे गुप्तचर के पास आ उसके चेहरे का निरीक्षण करते हुए बोले : "सेनापति भृगुदत्त ने तुम्हें भेजा है, इसका प्रमाण ?"



कुणाल : "दुष्ट संसार में कहाँ नहीं हैं, कांचन ? दुष्टों का नाश करने के लिए राजाओं को सदा सावधान रहना चाहिए।"
(नीला नागिनी, किशोर साहू)



तिष्यरक्षिता को विश्वास न हुआ कि आज वास्तव में अखंड मौर्य साम्राज्य की महारानी के रूप में वह पाटलिपुत्र के राजप्रासादों में विचरण कर रही है।

(शोभना समर्थ) पृ० १९

गुप्तचर शक्तिभद्र ने महामंत्री की हथेली में पड़ी हुई अँगूठी आदरपूर्वक उठा ली और उसमें गड़े हुए नग को उलट कर यह प्रगट कर दिया कि नग उलटने का भेद उसे ज्ञात है।

महामंत्री को सन्तोष हुआ। "ठीक है, अब समाचार सुनाओ," उन्होंने कहा।

"तक्षशिला के महासामन्त चन्द्रकेतु ने विद्रोह किया है," शक्तिभद्र ने सूचित किया। "तक्षशिला की प्रजा बड़ी दुखी है। आपकी सेवा में यह समाचार सुनाने के लिए ही उन्होंने मुझे पाटलिपुत्र भेजा है।"

"ठीक है। भृगुदत्त मौर्य सिंहासन के पुराने और आदरणीय पुजारी हैं। समाचार भेजकर उन्होंने उचित ही किया है। इस समय तुम जा सकते हो। मेरी दूसरी आज्ञा पाने तक तुम्हें पाटलिपुत्र में ही रहना होगा।"

महामंत्री की आज्ञा को शिरोधार्य कर गुप्तचर ने वहाँ से प्रस्थान किया।

महामंत्री ने मुड़कर कुणाल की ओर देखा। कुणाल, मंत्रणा-भवन के बीच, स्तम्भ के सहारे, कमर से लटकती हुई तलवार की मूठ को थामे, खड़ा हुआ था—एक निश्चित मूर्ति की भाँति।

"सुना, कुणाल! एक ओर तो ये छोटे-छोटे सामन्त और महासामन्त सम्राट को बूढ़ा और शक्तिहीन जानकर मौर्य-साम्राज्य से अलग होना चाहते हैं; और यहाँ बुढ़ापे में सम्राट को स्त्री, रूप और राग, रंग सूझ रहे हैं। महाप्रतापी अशोक आज महाविलासी बने जा रहे हैं। गोविन्द! गोविन्द!"

महामंत्री की बात कुणाल की समझ में नहीं आई। आवाक् होकर वह उनकी ओर देखने लगा। "आप बहुत उत्तेजित हो उठे हैं, महामंत्री।" उसने कहा।

"क्या कहते हो, कुणाल ? पूरे पचपन वर्षों से इस विशाल मौर्य-साम्राज्य के राई रत्ती भेदों को जानने वाला सोमदेव क्या पाटलिपुत्र के महलों में बैठे हुए सम्राट के मन को नहीं जानता ? चाणक्य का शिष्य सोमदेव पृथ्वी ही नहीं आकाश के भी सारे भेदों का पता रखता है। सम्राट अशोक इस बुढ़ापे में फिर विवाह करने जारहे हैं।"

सम्राट-पुत्र कुणाल के पैरों तले से धरती खिसक गई। अपने कानों पर विश्वास न करते हुए उसने पूछा : "पिता जी विवाह करेंगे ?"

"हाँ, और वह भी एक साधारण से सामन्त की कन्या के रूप पर रीझकर। अभी तक उन्होंने विवाह नहीं किया यही बहुत समझो। पर यह शीघ्र ही होकर रहेगा।"

आन्तरिक वेदना को दबाते हुए कुणाल ने कहा : "राजकुल के सूर्य विवाह करते ही रहते हैं; इसमें दुख करने की क्या बात है, आर्य ?"

"एक रानी और बढ़ाने के लिए यह विवाह नहीं हो रहा है, कुणाल। सम्राट के रनिवास में आकाश के तारों से भी अधिक स्त्रियाँ हैं। महा-प्रतापी अशोक को तिष्यरक्षिता अपने रूप का दास बना रही है, दुख इस बात का है ! तुम्हारी स्वर्गीया माता आसंधिमित्रा के पद पर वह स्त्री एक दिन बैठेगी, दुख इस बात का है ! और सम्राज्ञी आसंधिमित्रा को जुहार करने वाला यह बूढ़ा हाथ उस कल की छोकरी के आगे झुकेगा, दुख इस बात का है, कुणाल !"

"परन्तु अपने विवाह की बात सम्राट ने हमसे नहीं की !"

"सम्राट कौन-सा मुँह लेकर कहेंगे ? तिष्यरक्षिता चाणक्य के शिष्य के मुँह पर थप्पड़ मार रही है ! सुन्दरी होने के साथ ही साथ वह बड़ी चतुर है। आज पन्द्रह दिनों से उसकी दासी मेनका दिन-रात सम्राट की सेवा में रहती है। वह विवाह कराके ही मानेगी। परन्तु मैं बचाऊँगा।

मैं अभी जाकर महासामन्त चन्द्रकेतु के विद्रोह की बात सुनाऊँगा कि यह समय सम्राट के विवाह करने का नहीं।"

बहुत दिनों बाद सम्राट को आज मदिरा पीते देख परदे की ओट में खड़ी दासियाँ कानाफूसी करने लगीं।

"सम्राट आज मदिरा पी रहे हैं!" एक ने कहा।

"जबसे बौद्ध हुए, सम्राट ने पीना छोड़ दिया था," दूसरी बोली।

"हाँ, पर अब मेनका आई है। जो न होजाय सो थोड़ा है।"

परम बौद्ध सम्राट अशोक को भी आज मदिरा कुछ रुची नहीं। "कब तक यह सुरा उँड़ेलती रहोगी, मेनका?" उन्होंने कहा। "सूने मन्दिर में दीपक जलाने से क्या लाभ।"

मेनका के चपल नेत्र विजयोल्लास से चमक उठे। सुरा से छलछलाता हुआ स्वर्ण-पात्र महाराज की ओर बढ़ाती हुई सुन्दरी तिष्यरक्षिता की यह निपुण दासी बोली: "यह सुरा नहीं, महाराज। इस पात्र में किसी विरहणी के आँसू छलछला रहे हैं।"

"तिष्यरक्षिता!" महाराज ने अपनी प्रेमिका की याद में एक दीर्घ निश्वास ली।

चतुर मेनका ने जले पर नमक छिड़का। "वह बेचारी तो आपकी याद में तड़प रही होगी। न जाने कब सम्राट विवाह कर उसे अपने चरणों की दासी बनाएँगे!"

इसी समय द्वार पर पहरा देने वाली सशस्त्र द्वार पालिकाओं में से एक विधिपूर्वक निवेदन करने लगी: "परमेष्ठ परम बौद्ध परमायुधीय मौर्य मार्तण्ड देवानांपिय पियदसिन् महाराजाधिराज सम्राट अशोकवर्द्धन की जय हो!"

महाराज ने समाचार सुनाने का आदेश दिया।

"महामंत्री आर्य सोमदेव और सम्राट-पुत्र-कुणाल महाराज के दर्शनों के लिए पधारे हैं," कर जोड़े द्वारपालिका ने सूचित किया।

"हमारी आज्ञा है।"

महामंत्री के आगमन की सूचना पाते ही मेनका सुरापात्रों को समेट कर वहाँ से चलती बनी। परन्तु प्रवेश करते हुए महामंत्री की गृध्रदृष्टि से परदे की ओट में ओझल होती हुई मेनका बच न सकी।

होठों से लगी हुई सुरा को पोंछते हुए महाराज के निकट आकर बूढ़े महामंत्री ने आवश्यकता से अधिक झुककर प्रणाम किया। कुणाल भी झुका परन्तु महामंत्री के झुकाव में छिपे हुए व्यंग को महाराज ताड़ गए। "प्रजा की किस चिन्ता ने महामंत्री को यहाँ आने का कष्ट दिया?" महाराज ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"प्रजा की चिन्ता ने मुझे कभी नहीं कष्ट दिया, महाराज। सोचता यह हूँ कि कहीं मेरी चिन्ता प्रजा को कष्ट न देने लगे।"

"हम समझे नहीं आप क्या कहना चाहते हैं।"

"केवल एक बात। यह बूढ़ा मंत्री केवल यही चाहता है कि सम्राट अशोक के साम्राज्य में कभी शोक न हो।"

सम्राट हँस पड़े। "हमारे साम्राज्य में शोक! महामंत्री, यह आपकी नई चिन्ता है!"

"लोग आपको शिथिल जान कर सिर उठाना चाहते हैं। आज ही तक्षशिला से समाचार आया है।"

सम्राट सतर्क होकर आसन पर आगे खिसक आए। "क्या समाचार आया है तक्षशिला से?" उन्होंने पूछा। विनय पूर्वक कुणाल ने कहा: "महासामन्त चन्द्रकेतु ने तक्षशिला को मौर्य साम्राज्य से अलग कर आपके साथ विद्रोह किया है, महाराज।"

"वह तक्षशिला," महामंत्री बोले, "जहाँ आप स्वर्गीय सम्राट बिन्दुसार के समय में उपराजा थे। वहाँ की प्रजा आज दुख से हाहाकार मचा रही है. . . . . और यहाँ आप अपने अन्तःपुर में निश्चिंत सो रहे हैं।"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता," सिंह की तरह गरजते हुए सम्राट उठ खड़े हुए। "हमारे साम्राज्य का छोटे से छोटा मनुष्य भी हमें कुणाल की तरह प्यारा है।"

"था कभी, अब नहीं। अब तो महाराज केवल अपने से ही प्रेम करते हैं। केवल अपने ही सुख की बात सोचते हैं।"

बात महाराज को लग गई। आवेश में आकर महाराज ने कहा: "महामंत्री!"

परन्तु महामंत्री रुके नहीं। वे तो अपने मन की उगलने आए थे। "मैं ठीक कह रहा हूँ," उन्होंने कहा। "देवताओं के प्रिय अशोक ने आज अपने को भुला दिया है।"

"महामंत्री!"

"समुद्र से समुद्र तक फैले हुए विशाल मौर्य साम्राज्य के चक्रवर्ती सूर्य का तेज आज एक रूपवती स्त्री के काले केशों की घटा से घिर कर फीका पड़ रहा है!"

क्रोध से लाल हुए महाराज का सिर सहसा लटक गया। दबे हुए स्वर में उन्होंने कहा: "हम अपनी दुर्बलता को जानते हैं, आर्य! हम अपने मन को अब नहीं जीत पाते।"

बूढ़े महामंत्री सोमदेव ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा: "यह आप कह रहे हैं, महाराज? जिस अशोक ने अपने प्रेम से विदेशी राजाओं तक के मन जीत लिए!. . . . .यवन, गान्धार, काम्बोज, नाभक, भोज, मगध, राष्ट्रिक, आन्ध्र और कलिंग के हृदयों पर जो सम्राट आज राज्य कर रहा है—वह अशोक महान—अपने मन को जीत नहीं सकता? आश्चर्य!"

महामंत्री के सामने महाप्रतापी अशोक ने अपने आपको निरुत्तर पाया। डूबते को तिनके का सहारा काफ़ी होता है। नीची दृष्टि किए हुए महाराज कुणाल की ओर बढ़े। "तुम्हारी माता आसन्धिमित्रा के निर्वाण पाने के बाद," उन्होंने पुत्र के विशाल कन्धों पर अपने शिथिल हाथों को रखते हुए कहा, "हमारे जीवन में कोई सुख नहीं रह गया..... साँसों के बोझ को अकेले ढोने की हममें शक्ति नहीं। हम सुख और शांति चाहते हैं, कुणाल।"

"राम और भीष्म के देश में जन्म लेकर कुणाल अपने पिता के लिए प्राण तक निछावर करना जानता है, पिता जी। आज्ञा कीजिए।"

कुणाल के विशाल कन्धों पर पड़े हुए महाराज के अस्थिर हाथ स्थिर होगए। "देवी आसन्धिमित्रा का स्थान जब तक सूना रहेगा, हमारा मन किसी काम में नहीं लग सकता, कुणाल। इसलिए हमने सामन्त स्थाणुदत्त की पुत्री, कुमारी तिष्यरक्षिता, से विवाह करने का निश्चय किया है।"

"माता आसन्धिमित्रा के सूने स्थान की शोभा कोई स्त्री बढ़ा सकती है, यह देख कर कुणाल को सदा प्रसन्नता ही होगी, महाराज," कुणाल ने भावहीन स्वर में कहा और प्रणाम कर वहाँ से चल दिया।

महामंत्री ने एक गृध्र-दृष्टि महाराज की ओर डाली। कुणाल के शब्दों में छिपे हुए व्यंग को महामंत्री की इस तीखी दृष्टि ने महाराज के सामने एक दम उभार कर रख दिया। परन्तु अविचलित होते हुए महाराज के मुँह से ठण्डे पानी में बुझे हुए लोहे की तरह निकला: "हमने विवाह करने का निश्चय किया है, महामंत्री।"

मौर्य साम्राज्य के महामंत्री सोमदेव को परम बौद्ध मौर्य सम्राट अशोक की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। सिर झुकाते हुए महामंत्री बोले: "जो आज्ञा, साम्राट। मैं अभी जाकर सारे नगर में ढिंढोरा

पिटवाए देता हूँ कि सामन्त स्थाणुदत्त की पुत्री कुमारी तिष्यरक्षिता के साथ सम्राट का विवाह होगा। सारे नगर में बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया जाएगा—जैसा कि स्वर्गीया सम्राज्ञी असन्धिमित्रा और सम्राट के विवाह के अवसर पर हुआ था। वरन उससे भी दूना।"

चोट खाए हुए बाघकी तरह महामंत्री को घूरते हुए महाराज ने उत्तर दिया : "विवाह अशोक का हो रहा है, महामंत्री; सम्राट का नहीं, इस लिए नगर में कोई उत्सव न होगा।"

"जो आज्ञा, महाराज।"

"और महासामंत चंद्रकेतु को दण्ड देने के लिए कुणाल तक्षशिला भेजे जाएँ।"

"जो आज्ञा, महाराज," कहते हुए महामंत्री ने फिर आवश्यकता से अधिक सिर झुकाया और धीरे-धीरे वहाँ से वे चल पड़े।

द्वार की ओर बढ़ते हुए महामंत्री पर से ज्योंही महाराज ने दृष्टि फेरी उन्होंने देखा सीढ़ियों पर महारानी कुरुवकी खड़ी हुई हैं। अवश्य ही महारानी ने सब कुछ सुन लिया है। आन्तरिक वेदना को छिपाती हुई महारानी कुरुवकी ने पति की ओर देखकर मुस्कुराना चाहा। परन्तु उस हल्की-सी मुस्कुराहट का बोझ महाराज से न उठाया गया। और बीस वर्ष पूर्व, कलिंग की रण-भूमि पर, जो आँखें रक्त बरसा चुकी थीं, आज वे ही आँखें सहसा निस्तेज होकर झप-झप करती हुईं धरती पर झुक गईं।

दूसरा परिच्छेद

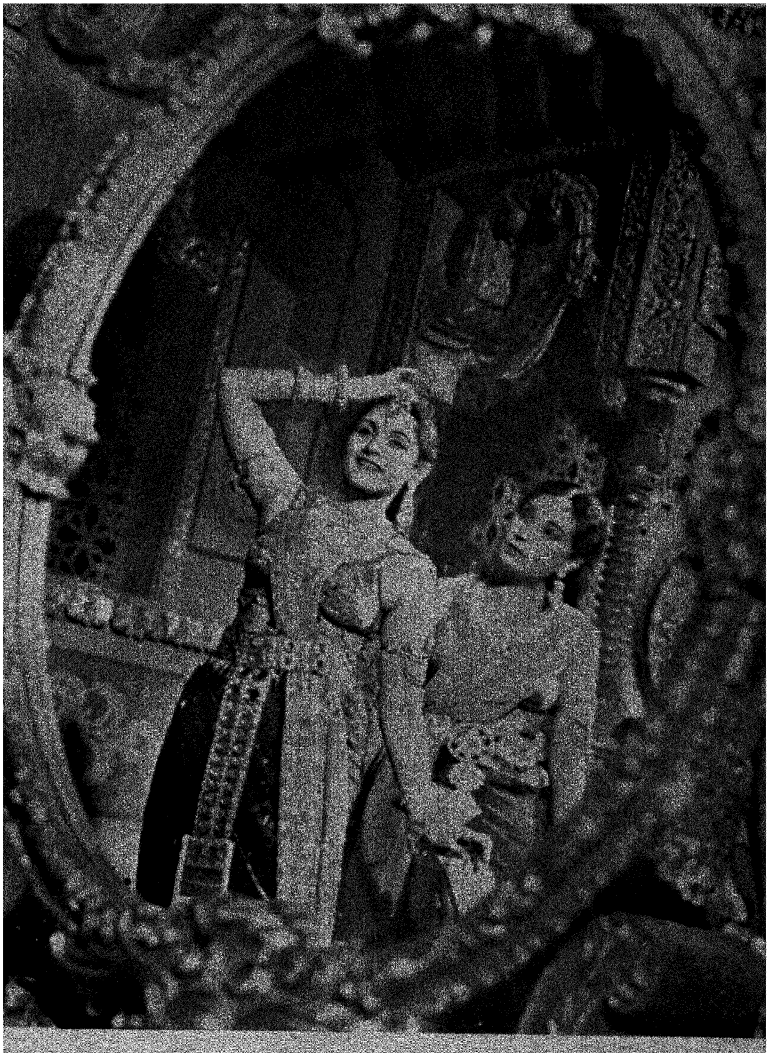
राजप्रासादों के द्वार और वातायनों पर आज अपार भीड़ लगी हुई है। एक ओर राजभवन की समस्त षोड़शी बालाएँ सोने के थालों में पुष्प और कुंकुम लिए खड़ी हैं। दूसरी ओर गवाक्षों से झाँकती हुई अन्तःपुर की महारानियों के उत्सुक नैन, सिंहद्वार में प्रवेश करती हुई, मयूराकार सुसज्जित पालकी पर टिके हुए हैं।

ड्योढ़ी पर पहुँचते ही कहारों ने शंखनाद और हुलु-ध्वनि के साथ पालकी नीचे उतारी। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया। दासियों ने मंगल गीत गाकर पालकी पर फूल बरसाए। मेनका, आनन्द-विभोर हो, कुंकुम का थाल लिए पालकी की ओर बढ़ी और थाल को चौकी पर रखकर उसने पालकी पर लगे हुए रेशमी परदे को हटाया। "स्वागत, महारानी," उसने कहा। "स्वागत।"

सुन्दरी तिष्यरक्षिता का महावर से अनुरंजित, रक्त-कमल-सा कोमल, पाँव पायल की रुनझुन के साथ धीरे-धीरे पालकी से बाहर निकला और कुंकुम के थाल पर आ टिका। मेनका ने बड़े हाव-भाव के साथ आरती उतारी और अन्य दासियों ने पालकी से बाहर आती हुई नई महारानी पर फूल बरसाए।

मेनका, हर्ष से इतराती हुई, महारानी को उस महल में ले गई जो पहले स्वर्गीया सम्राज्ञी आसन्धिमित्रा का था। "सम्राज्ञी आसन्धिमित्रा का महल," मेनका गर्व से झूमती हुई बोली, "जो अब महारानी तिष्यरक्षिता के रूप से प्रकाश पाएगा।"

तिष्यरक्षिता को अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। उसे विश्वास



तिष्यरक्षिता : "मेरे हृदय ने मुझे महारानी नहीं बनाया, मैनका। अपने रूप और यौवन के इन हाथियारों से ही आज मैंने महाप्रतापी सम्राट अशोक को जीता है।"
(शोभना समर्थ, कांता कुमारी)



जान पड़ता है मानो महारानी कुरुवकी का हराभरा बाग आज सहसा उजड़ गया हो !
(दुर्गा खोटे) पृ० २०

न हुआ कि आज वास्तव में अखण्ड मौर्य साम्राज्य की महारानी के रूप में वह पाटलिपुत्र के राजप्रासादों में विचरण कर रही है। "मेनका," अपनी बाल-सखी के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेते हुए उसने कहा, "आज वह शुभ दिन आया!"

"हाँ, सम्राज्ञी!"

"भूलती हो, मेनका; मैं अभी महारानी हूँ, सम्राज्ञी नहीं।"

"खिले हुए फूल को गले का हार बनते देर नहीं लगती, महादेवी। आज नहीं तो कल आप ही मौर्य सिंहासन पर सम्राट के साथ बैठेंगी।"

"मेनका, स्त्री के रूप में ऐसा कौन सा जादू है जो बड़े से बड़े पुरुष को भी स्त्री का दास बना देता है?" शयनगृह की देहली पर पैर रखते हुए तिष्यरक्षिता ने पूछा और सामने लगे हुए शीशे में अपने प्रतिबिम्ब को ताकते हुए उसने एक मादक अँगड़ाई ली।

"जादू रूप में नहीं, स्त्री के हृदय में होता है, महारानी।"

"मेरे हृदय ने मुझे महारानी नहीं बनाया, मेनका। अपने रूप और यौवन के इन हथियारों से ही आज मैंने महाप्रतापी मौर्य-सम्राट अशोक को जीता है।"

राजमहलों में हर जगह आज तिष्यरक्षिता की ही चर्चा छिड़ी हुई है। दासी-वर्ग में तो विशेष हलचल है। "महाराज तो अब देवी आसन्धिमित्रा को भूल ही जाएँगे," किसी ने कहा। "जब जब इस नई महारानी को देखती हूँ," दूसरी बोली, "मन देवी आसन्धिमित्रा के लिए रोने लगता है।" तीसरी ने कहा: "हाँ, श्यामा! वह देवी हम सब की माता थीं।"

उधर अन्तःपुर में महारानी लक्ष्मी अपना रोना रो रही थीं: "अरे हमारा मोल ही क्या! हम तो बस नाम की ही रानियाँ हैं!"

"एक दिन सम्राट की सेज का खिलौना बन गईं, फिर कोई पूछता भी नहीं," महारानी मंजुला ने कहा!

महारानी सुभद्रा ने महारानी मंजुला की बात का समर्थन किया। "हाँ जी, महारानी कुरुवकी के जी में पूछो," उन्होंने कहा; "देवी आसन्धिमित्रा के बाद वे ही सम्राज्ञी बनने के योग्य थीं।"

महारानी कुरुवकी के महलों में आज बिलकुल सन्नाटा है। जान पड़ता है मानो उनका हरा-भरा बाग आज सहसा उजड़ गया हो। कितनी देरसे झरोखे में खड़ी हुई महारानी कुरुवकी के सजल नेत्र नीचे नहर के किनारे फूलों से सजती हुई नौका पर लगे हुए हैं..... आज महाराज इस नई महारानी के साथ वही जल-विहार करेंगे जो उन्होंने कभी महारानी कुरुवकी और उससे भी पहले देवी आसन्धिमित्रा के साथ किया था।

सहसा महारानी को भास हुआ मानो कोई उन्हें पुकार रहा है। उन्होंने मुड़कर देखा—डलिया में बहुत-से फूल लिए मालन खड़ी थी। "महारानी की फुलवारी में ये नए फूल खिले हैं," मालन ने अभिवादन करते हुए सूचित किया।

महारानी के चेहरे पर एक सूखी हँसी झलक उठी। "मेरी फुलवारी में!" उन्हों ने कहा। "नहीं, मालन, तुझे धोखा हुआ। स्त्री और फूल जब खिलते हैं तो सेज की शोभा बढ़ाते हैं, और जब मुरझाते हैं——"

"तब क्या होता है, महारानी?"

"तब?.....क्या करेगी जानकर! फूलों के मुरझाने की बात स्त्रियों को नहीं जाननी चाहिए—दुख होता है।"

भोली मालन की सीमित तर्क बुद्धि महारानी की उक्ति के शब्द-जाल में उलझी अवश्य पर उसके स्त्री-हृदय ने महारानी की आन्तरिक वेदना को सहज ही भाँप लिया।

संध्या की सुनहली किरणें स्नानागार के गवाक्षों से छन-छन कर

सुन्दरी तिष्यरक्षिता के लावण्य को विकसित कर रही हैं। मेनका स्वर्ण कलशों में भरे हुए दूध से महारानी के अंग से सुगन्धित उबटन छुड़ा रही है। आसपास अनेक दासियाँ महारानी की सुहाग-रात के लिए शृंगार की विविध सामग्रियाँ जुटा रही हैं। दासियों की आँख बचाकर चपल मेनका महारानी के कान भरती जारही है :

"महलों में महारानी कुरुवकी का——"

मेनका की बात काटते हुए महारानी ने कहा : "छोड़ उसकी बात को; मुरझाए हुए फूल का मोल ही क्या ? कुरुवकी से मुझे कोई डर नहीं, मेनका।"

"पर महामंत्री सोमदेव चाणक्य का शिष्य है। उससे तुम्हें सदा सावधान रहना चाहिए। वह तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु है।"

तिष्यरक्षिता मुस्कुराई। "स्त्री का सबसे बड़ा शत्रु उसका बुढ़ापा होता है, पगली," उसने कहा।

"तुम्हारा दूसरा शत्रु है कुणाल।"

"कौन—आसन्धिमित्रा का बेटा ?"

"हाँ, तुम्हारी सौत का बेटा। सम्राट सबकी बात टाल सकते हैं, पर कुणाल की बात कभी नहीं। वह उन्हें बहुत प्यारा है। तुम्हारे विवाह में इन्हीं लोगों ने बाधा डाली थी।"

"मैं समझ लूँगी," चौकी से उतरते हुए तिष्यरक्षिता ने बड़े गर्व के साथ कहा। "सोमदेव और कुणाल—इन्हें तो मैं यों उड़ाऊँगी जैसे आँधी में तिनके उड़ते हैं।"

निर्मल जलराशि पर पड़े हुए झिलमिल तारों से झिलमिलाती रात के झिलमिल प्रतिबिम्ब को चीरती हुई मन्थ्याकार नौका महाराज और उनकी नव-वधू को लिए वाटिका के एक छोर से दूसरे छोर चली जा

रही है। मदमाती नौका के अगले सिरे पर बैठी हुई मेनका वीणा पर अपने मधुर कण्ठ से सुहाग-गीत अलाप रही है।

रेशमी परदे की ओट में, अपनी प्रेमिका को बाहुपाश में कसते हुए, महाराज ने कहा : "आज अशोक को शोक के बंधनों से छुटकारा मिला। तुमने अपने प्रेम के बंधनों में बाँध कर आज हमें बहुत सुखी किया, तिष्यरक्षिता !"

"प्रियतम !" तिष्य ने कहा और पति के चरणों में सिर रखती हुई वह फिर बोली : "आपको सुखी करने के लिए ही मैं इन चरणों में आई हूँ।"

सम्राट ने तिष्य को अपने चरणों पर से हटा कर फिर से अपने आलिंगन में ले लिया।

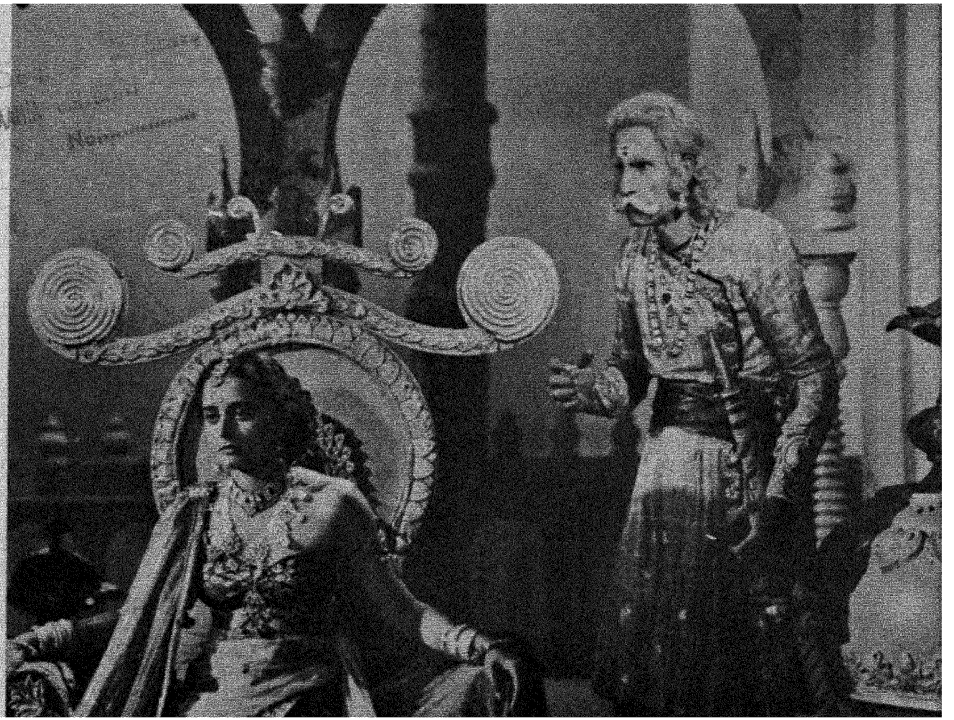
"तुम्हारी जगह यहाँ है, प्रिये। तुम्हें पाकर अब हमारे मन में कोई लालसा नहीं रह गई। जबसे देवी आसन्धिमित्रा परलोक सिधारीं, हम बहुत दुखी रहते थे। तुम हमारे उजड़े हुए जीवन में बसन्त बन कर आई हो। तुम्हारे बिना हम सम्राट होकर भी भिखारी थे।"

"ऐसा न कहें, मेरे स्वामी——" पति के मुँह पर हाथ रखती हुई तिष्य बोली।

विचलित होते हुए महाराज के प्यासे अधर तिष्य के अरुण कपोलों पर उतर आए.....और अलमस्त नौका झूम-झूम कर लहरों पर थिरकने लगी.....



अशोक : " तुम हमारे उजड़े हुए जीवन में बसंत बन कर आई हो। "
(शोभना समर्थ, मुबारक)



महामंत्री : "काँच के टुकडे को पाकर सम्राट हीरे का मोल भूल गए हैं।"

(नीला नागिनी, शाकिर)

पृ० ३२

तीसरा परिच्छेद

परम प्रतापी मौर्य सम्राट अशोक का इस बुढ़ापे में षोड़शी तिष्य-रक्षिता के साथ विवाह करना किसी को विशेष रुचा नहीं। परन्तु अपने मन के भावों को प्रदर्शित न करते हुए महारानी के मुख-दर्शन के लिए सभी महिलाएँ राजमहल में उपस्थित हुईं।

मौर्य-कुल-वधू कांचनमाला भी कुमार सम्प्रति को लिए आई। रास्ते में उसने पुत्र को आदेश दिया: "जाकर अपनी नई दादी को प्रणाम करना, सम्प्रति, हाँ?"

"कहाँ तक अपनी नई दादियों को प्रणाम करता रहूँ, माँ! दादा जी तो रोज़ एक नई दादी लाते हैं!"

"छुत पगले! ऐसा नहीं कहते। तेरी ये नई दादी बहुत अच्छी हैं। उनके सामने ठीक-ठीक रहना। आदर से बात करना, अच्छा?"

मात की बात का उत्तर दिए बिना ही सामने से आती हुई महारानी कुरुवकी को सम्प्रति ने झुक कर प्रणाम किया। आशीर्वाद देती हुई कुरुवकी ने बच्चे को सस्नेह गोद में उठा लिया और कांचन-माला से कहा: "अपनी नई सास के मुखदर्शन के लिए आई हो?"

कांचन ने मुस्कुरा कर उत्तर में सिर हिला दिया। इसी समय महा-सेनापति प्रचण्डनाद की स्त्री अपनी पुत्री के साथ नई महारानी के दर्शन कर लौट रही थी। उन्होंने महारानी कुरुवकी को प्रणाम किया। सम्प्रति को देखकर महासेनापति की पुत्री रुक गई और फिर उसके पास आकर बड़ी ममता के साथ उसने उसे गोद में उठा लिया। परन्तु तुरन्त ही कांचन की तीव्र दृष्टि से सहम कर उसने कुमार को गोदी से

उतार दिया और उसके माथे को चट से चूमकर वहाँ से वह चलती बनी।

कांचनमाला ने संदिग्ध दृष्टि से महारानी कुरुवकी की ओर देखा। "क्या यही ?" उसने पूछा। "हाँ यही है, महासेनापति प्रचण्डनाद की बेटी देवप्रिया," कांचनमाला के कंधे पर हाथ रखती हुई महारानी कुरुवकी बोली, "जिससे कुणाल का ब्याह होने जा रहा था. . . . .परंतु फिर तुम आगईं।"

कांचन मुरकुराई। महारानी भी मुस्कुरा रही थी। बातों के इसी सिलसिले में वे तिष्यरक्षिता के भवन के द्वार पर आ पहुँचीं। द्वारपालिका आदरपूर्वक अभिवादन करती हुई उन्हें घोषित करने लगी : "परम सौभाग्यवती चारू शीला महारानी कुरुवकी। परम सौभाग्यवती मौर्य-कुल-वधू देवी कांचनमाला।"

उपस्थित महिलाओं के बीच बैठी हुई तिष्यरक्षिता हर्ष और प्रेम का नाट्य करती हुई सबके हृदयों को विमोहित कर रही थी। महारानी कुरुवकी और देवी कांचनमाला के आगमन की सूचना पाकर वह उठ खड़ी हुई और आगे बढ कर उनका उसने बड़े प्रेम से स्वागत किया।

कुमार सम्प्रति द्वारपालिका से उलझ पड़ा। "मेरा नाम क्यों नहीं पुकारा तूने ? मैं भी तो आया हूँ," वह पूछ रहा था।

तिष्यरक्षिता आगे बढी और कुमार को गोदी में लेते हुए उसने कहा : "तेरा नाम मैं पुकारूँगी, बेटा। परम प्रतापी बाल-शिरोमणि सम्प्रतिकुमार।"

रोष से तनी हुई कुमार की भृकुटी ढीली पड़ी और सभी हँस पड़े। चरणों में झुकी हुई कांचन को अखण्ड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देकर तिष्यरक्षिता ने उसे बड़े प्रेम के साथ उठाया और महारानी कुरुवकी का हाथ अपने हाथों में लेती हुई वह बोली : "मैं सोच रही थी, बहन अभी तक क्यों नहीं आईं ? और तुम न आतीं तो मैं अभी तुम्हारे पास पहुँच जाती। और, कांचन, कुणाल अभी तक क्यों नहीं आए ?

सब लोग मुझसे मिलने आए और बेटा अभी तक अपनी माता से मिलने नहीं आया !''

''वे यहाँ नहीं हैं, माता जी,'' कांचन ने उत्तर दिया।

''नहीं है !''

''आखेट पर गए हैं।''

''हमारे कुणाल को आखेट का बड़ा व्यसन है,'' कुरुवकी ने कहा। ''जब छुट्टी मिलती है आखेट पर चला जाता है।''

तिष्यरक्षिता को संतोष नहीं हुआ। ''परंतु अपनी माँ के आने पर तो उन्हें यहीं पर रहना था,'' उसने कहा। ''वीर कुणाल से मिलने की बड़ी इच्छा है !''

विषय बदलते हुए कांचन ने पुत्र से कहा : ''अपनी दादी को तूने प्रणाम नहीं किया, सम्प्रति ! प्रणाम कर बेटा।''

सम्प्रति ने महारानी कुरुवकी को फिर से प्रणाम किया। ''मुझे नहीं बेटा। अपनी दूसरी दादी को,'' कुरुवकी बोली।

'दूसरी दादी' से किसकी ओर संकेत किया गया है यह न समझता हुआ बालक सम्प्रति इधर-उधर देखने लगा। उसकी भटकती हुई आँखें सहसा सामने दीवार पर बने हुए स्वर्गीया सम्राज्ञी आसंधिमित्रा के तैल-चित्र पर जा टिकीं और उसने बड़ी श्रद्धा से उस चित्र को प्रणाम किया।

अपनी बालसखी महारानी तिष्यरक्षिता का यह अनादर मेनका को बहुत खटका। ''अपनी नई दादी को प्रणाम करो, कुमार,'' उसने रूखे स्वर में सम्प्रति को आदेश-सा दिया; और महारानी तिष्यरक्षिता की ओर संकेत करती हुई बोली : ''ये देखो, ये हैं तुम्हारी नई दादी।''

सम्प्रति को मेनका की बात पर राई भर भी विश्वास न हुआ। वह खिलखिला कर हँस पड़ा।

"ये हैं ? मेरी नई दादी ये हैं ?. . . . ."

परम प्रतापी मौर्य-सम्राट अशोक के हृदय पर विजय पाने वाली सुन्दरी तिष्यरक्षिता को आज बालक सम्प्रति के हाथों पराजित होना पड़ा ।

चौथा परिच्छेद

महाराज के इस नए विवाह ने राज-महलों के विशुद्ध, शान्तिमय वातावरण में एक विचित्र परिवर्तन कर दिया। स्वर्गीया आसन्धिमित्रा के जिन महलों में कभी अहिंसा, शान्ति, न्याय और सुख का एकछत्र शासन रहता था वहीं अब हिंसा, अशान्ति, अन्याय और षड्यंत्र का जाल महत्वाकांक्षिणी तिष्यरक्षिता बिछा रही थी। राजकर्मचारियों को एक दूसरे के विरुद्ध उकसाना और राजभक्त महामंत्री सोमदेव और सम्राट-पुत्र कुणाल के प्रति महाराज के हृदय में जो श्रद्धा और प्रेम था उसे कम अथवा एक दम नष्ट कर देने की चेष्टा में तिष्यरक्षिता संलग्न थी।

ढलती हुई रात का घोर सन्नाटा चारों ओर विराजमान था। मौन वातावरणको अपनी कोमल पद-ध्वनिसे भंग करते हुए मेनका ने अन्तःपुर के गुप्त द्वार से निकल कर राज-वाटिका में प्रवेश किया। उसकी उत्सुक आँखें महलों को घेरे हुई ऊँची चारदीवारी की काली छाया में किसी को ढूँढने लगीं। सहसा कमंद द्वारा दीवार फाँदकर एक मनुष्याकृति आगे बढ़ी।

"तुम आगए, बीजगुप्त!" पहचानते हुए मेनका ने कहा।

"तुम बुलाओ और हम न आएँ? तुमसे मिलने के लिए मैं हर दम बालू पर पड़ी हुई मछली की तरह तड़पा करता हूँ, मेनका। न जाने कौनसा जादू कर दिया है तुमने!"

महादण्डपाल बीजगुप्त पहले महामंत्री सोमदेव का बड़ा ही विश्वासपात्र अनुचर था। परन्तु अब, चपल मेनका के नैन-बाणों से घायल हो, वह तिष्यरक्षिताका गुप्तचर बनकर मेनका द्वारा राज्य की सभी ख़बरें महारानी तक पहुँचाया करता है।

लज्जा का एक भाव दिखाती हुई मेनका बोली : "अच्छा यह बतलाओ, कोई समाचार लाए ?"

"वही कहने तो आया हूँ। आज देवी आसन्धिमित्रा की बर्षी है। सोमदेव ने उनकी समाधि पर प्रजा के द्वारा बहुत बड़ा उत्सव कराने का निश्चय किया है। इस तरह प्रजा के सामने वह महारानी तिष्यरक्षिता को नीचा दिखाना चाहता है।"

"यह बात! बीजगुप्त, तुमने ठीक समय पर समाचार दिया। मैं अभी जाकर महारानी से कहती हूँ।"

मेनका की बाँह पकड़ उसे रोकते हुए बीजगुप्त ने कहा : "अरे ठहरो तो, भिखारी को द्वार पर बुला कर बिना भीख दिए ही लौटा दोगी ?"

"बड़े नटखट हो। हटो, छोड़ो, मुझे जाने दो। भोर हो रही है..... बीज गुप्त.....नहीं मानोगे ?"

"बस अब तो तुम महारानी से कहकर मुझे महासामन्त बनवा दो। फिर हम-तुम विवाह कर लेंगे।"

अपने युवक-प्रेमी की अधीरता पर मेनका मुस्कुरा दी और पल्ला छुड़ाकर वहाँ से चलती बनी।

शयनगृह में वीणा के कोमल तारों को अपनी कोमल अँगुलियों से छेड़ती हुई तिष्यरक्षिता प्रभाती गाकर पति को जगा रही थी। महाराज ने अपनी अलसाई हुई आँखें खोलीं और अँगड़ाई लेते हुए वे उठ बैठे। तिष्यरक्षिता ने महाराज के चरणों में झुककर अभिवादन किया। महाराज प्रेमपूर्वक तिष्य को हृदय से लगाते हुए उसकी आँखों में देख कर बोले : "क्या बात है, तिष्य ?.....तुम सुखी तो हो ?"

"आपने मुझे अपने चरणों की दासी बना लिया, इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या सुख हो सकता है, नाथ ! हाँ, पर एक बात मुझे बहुत दुख पहुँचाती है।"

"वह क्या, प्रिये ?"

"कुणाल ने अभी मुझे अपनी माँ नहीं माना। मेरा पुत्र मुझसे मिलने नहीं आया।"

"कुणाल यहाँ है नहीं, प्रिये ?"

"जानती हूँ, परन्तु माँ के आने के अवसर पर बेटा आखेट को चला जाय——"

"आखेट ! यह तुमसे किसने कहा ?"

"कांचन ने"

महाराज खिलखिला कर हँस पड़े। "कुणाल विद्रोही महासामन्त चन्द्रकेतु को दण्ड देने के लिए तक्षशिला गया है। यह बात छिपाकर रखी गई है, प्रिये। कुणाल बड़ा योग्य है। आते ही वह अपनी माँ से अवश्य मिलेगा।"

इसी समय भेरी बज उठी। महाराज झरोखे पर जा खड़े हुए और वहाँ से नीचे, गौओं को लिए, मंत्र उच्चारण करते हुए ब्राह्मणों को उन्होंने माथा नवा कर प्रणाम किया।

थाल में फूलों का गजरा लिए मेनका आई और चट से महाराज की आँख बचाती हुई तिष्यरक्षिता के कान भरने लगी।

"महादण्डपाल आए थे। सोमदेव आज प्रजा से आसन्धिमित्रा की वर्षी मनवाकर तुम्हें नीचा दिखाना चाहता है।"

तिष्यरक्षिता पर मानो बिजली टूट पड़ी। परन्तु तुरन्त ही उसने अपने को सँभाल लिया। "यह बात है ! तब तो सोमदेव को मैं उसी की चाल से हराऊँगी," उसने कहा; और मेनका के थाल से हार लेती हुई वह झरोखे में खड़े हुए महाराज की ओर बढ़ी।

नीचे खड़े हुए ब्राह्मणों को मुहरों का तोड़ा दान करके महाराज मुड़े और तिष्यरक्षिता की ओर ताकने लगे।

"क्या सोच रहे हैं, महाराज ?" तिष्य ने पूछा।

"सोच रहे हैं कि हम सम्राट न होकर काश एक साधारण किसान हुए होते और तुम खेतों में हमारे साथ काम किया करतीं। तुम्हारी जैसी सुन्दरी को पाकर यह महलों का बन्धन, यह साम्राज्य का बन्धन हमें खल रहा है, प्रिये। तुम्हें छोड़कर कहीं जाना हमें अच्छा नहीं लगता।"

"यह बात फिर कभी न कहना, स्वामी ! प्रजा मेरी निन्दा करेगी कि नई महारानी ने सम्राट को हमसे छीन लिया। आप पहले प्रजा के हैं, बाद में मेरे।"

"हम तुम्हारी परीक्षा ले रहे थे," सन्तोष की साँस लेते हुए महाराज ने कहा। "यही देखना चाहते थे कि तुम्हें अपने कर्तव्य का कितना ध्यान है। हम तुमसे बहुत प्रसन्न हुए—और इसीलिए हम तुम्हें कुछ देना चाहते हैं।"

तीर बराबर निशाने पर लगा देख तिष्य मन ही मन खिल उठी। "माँगू ?" उसने पूछा। "माँगूँ ? देंगे ?"

"अशोक तुम्हें क्या नहीं दे सकता, प्रिये ! माँगो क्या माँगती हो ?"

तिष्य पति की आँखों में देखती हुई बोली : "आज मेरी बड़ी बहन, देवी आसन्धिमित्रा की वर्षी है।"

महाराज की आँखें सहसा नीचे को झुक गईं। "अरे हाँ ! हम तो भूल ही गए थे !" उन्होंने कम्पित स्वर में स्वीकार किया।

"मैं चाहती हूँ कि वर्षी का उत्सव केवल महलों में ही नहीं वरन् सारे पाटलिपुत्र में मनाया जाय, पाटलिपुत्र की प्रजा मेरी बहन की समाधि पर पूजा के फूल चढ़ाए।"

तिष्यरक्षिता के मुख से निकले हुए ऐसे शब्दों को सुनकर महाराज की आँखों में प्रेमाश्रु छलछला उठे।

"तुम धन्य हो देवी। कुणाल यह सुनेगा तो बहुत प्रसन्न होगा।" फिर उन्होंने मेनका को सम्बोधित करते हुए आदेश दिया : "मेनका, महारानी की ओर से नगर में यह आज्ञा प्रचारित की जाय कि आज सारी प्रजा देवी आसन्धिमित्रा की वर्षी मनाएगी।"

"जो आज्ञा, महाराज," मेनका ने सिर झुकाते हुए कहा ; और महाराज को बाहर जाते देख वह तिष्य के पास आकर खड़ी होगई।

"चाणक्य का शिष्य सोमदेव देखेगा," अपनी सरल जीत पर सगर्व मुस्कुराती हुई तिष्य ने कहा, "कि वह अपनी ही चाल से हार गया।"

मेनका फूली नहीं समा रही थी। हलका-सा ठहाका मार कर वह हँस पड़ी। "जो काम सोमदेव प्रजा में तुम्हारी निन्दा फैलाने के लिए कर रहा था," उसने कहा, "उसी के कारण मौर्य-साम्राज्य की प्रजा आज से तुम्हारी पूजा करने लगेगी, महारानी।"

सम्राट-पुत्र कुणाल की पत्नी कांचनमाला को दासी ने सूचित किया कि महामंत्री सोमदेव पधारे हैं। प्रातःकाल महामंत्री का इस प्रकार सहसा आ जाना कांचनमाला कुछ समझी और कुछ न समझी। कुमार सम्प्रति को वह धनुर्विद्या सिखा रही थी। तीरों से भरा तरकश दासी को सौंपती हुई वह महामंत्री से भेंट करने के लिए सत्कार-गृह में चली आई। वृद्ध महामंत्री द्वार की ओर पीठ किए हुए, स्तम्भ के सहारे खड़े, दूर आकाश की ओर ताक रहे थे।

"प्रणाम करती हूँ, आर्य," कांचन ने अभिवादन किया। महामंत्री की विचारधारा टूटी। "तुम्हारे सौभाग्य का सूर्य तेजस्वी हो, बेटी," महामंत्री ने आशीर्वाद दिया और अपने रूखे श्वेत केशों पर वे हाथ फेरने लगे।

महामंत्री के मन की बेचैनी को भाँपते हुए कांचन ने निस्तब्धता भंग की : "आज माता आसन्धिमित्रा की वर्षी है !"

महामंत्री को अवसर मिला। "हाँ, बेटी," उन्होंने कहा, "यही कहने के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। कुणाल आज नगर में है नहीं और काँच के टुकड़े को पाकर सम्राट हीरे के मोल को भूल गए हैं।"

"तो क्या इस बार महलों में माता की वर्षी भी नहीं मनाई जाएगी?"

"महल अब तिष्यरक्षिता का है, बेटी; वह आसन्धिमित्रा को भूल गया। परन्तु पाटलिपुत्र की प्रजा अपनी माता को नहीं भूल सकती। मेरी आज्ञा से आज नगर में स्वर्गवासिनी बहू की वर्षी मनाई जाएगी।"

महामंत्री की इस असीम राजभक्ति पर कांचन मुग्ध हो गई परन्तु उसके अधर किसी अज्ञात आशंका से काँपने लगे। "महाराज को यह मालूम है?" उसने कम्पित स्वर में पूछा।

"अभी नहीं। महाराज को नींद में सोने दो। मेरे सेवक अभी जाकर प्रजा को सूचित करेंगे. . . . .और तब तिष्य को मालूम होगा कि वह सम्राट को भले ही जीत ले किन्तु साम्राज्य की प्रजा का हृदय वह नहीं जीत सकती।"

सहसा बाहर सड़क पर ढिंढोरे का नगाड़ा बज उठा। महामंत्री लपक कर झरोखे पर आकर सुनने लगे :

"देवानां पिय पियदसिन महाराजाधिराज सम्राट अशोकवर्द्धन की जय ! महारानी तिष्यरक्षिता की आज्ञा से आज पाटलिपुत्र की प्रजा स्वर्गीया सम्राज्ञी आसन्धिमित्रा की वर्षी मनाएगी। महारानी तिष्यरक्षिता की आज्ञा का सब जगह प्रचार हो। महारानी तिष्यरक्षिता की जय !"

महामंत्री को मानो सौ बिच्छुओं ने एक साथ काट दिया। "महारानी तिष्यरक्षिता की जय !" व्यंग करते हुए मुँह बनाकर उन्होंने दुहराया।

"बड़ी चतुर है ! तिष्यरक्षिता जीत गई । चाणक्य के शिष्य सोमदेव को उसने आज दूसरी बार हराया ।"

कांचनमाला के पैर डगमगाने लगे । वह किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह धड़ाम से आसन पर आ बैठी और महामंत्री के अवाक् चेहरे को ताकने लगी ।

नगर के बाहर, सोन नदी के तीर पर, एक भव्य बौद्ध-स्तूप था । यह स्तूप कलिंग-विजय के बाद ही, रक्तपात के वीभत्स दृश्यों से विरक्त होकर महाराज ने बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेने के बाद ही, बनवाया था । यहीं पर विशाल ताल वृक्षों के झुरमुट में देवी आसन्धिमित्रा की पावन समाधि थी । आज प्रातःकाल ढिंढोरे के बाद से ही पाटलिपुत्र के निवासी समाधि पर श्रद्धांजलि के लिए जमा हो रहे थे । सम्राट और उनकी समस्त रानियां भी उपस्थित थीं । महामंत्री सोमदेव और राज्य के अन्य पदाधिकारी महाराज के पास खड़े थे । बौद्ध भिक्षुओं का विशाल समुदाय विधिपूर्वक मंत्रों का उच्चारण करता हुआ समाधि को घेरे हुए खड़ा था ।

"भई, हमारी नई महारानी भी सम्राज्ञी आसन्धिमित्रा की तरह महान हैं," एक नागरिक दूसरे से बोला ।

दूसरे ने समर्थन करते हुए कहा : "दूसरी स्त्रियां अपनी सौतों से जलती हैं, और देखो इन्होंने आते ही अपनी सौत की बर्षी मनाई ।"

वास्तव में तिष्यरक्षिता देवी आसन्धिमित्रा की बर्षी मनाने की आज्ञा देकर समस्त नगर निवासियों की श्रद्धा का पात्र बन चुकी थी ।

"मुझे तो दुख इस बात का है, महाराज—" कृत्रिम करुणा का भाव दर्शाती हुई तिष्य पति से बोली—"कि मेरा पुत्र कुणाल आज इस अवसर पर नहीं है !"

"हमें भी इस बात का दुख है, देवी.....कुणाल आज यहाँ नहीं है !" महाराज ने एक ठण्डी सांस लेते हुए कहा । पास में खड़ी हुई

महारानी कुरुवकी आगे बढ़ी। "नहीं, महाराज, कुणाल अपनी माता की वर्षी का दिन नहीं भूल सकता——" उसने कहा, परन्तु अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि दूत ने आकर जयघोष के साथ सूचना दी :

"महाराज की जय हो ! सम्राट–पुत्र कुणाल तक्षशिला के महा-सामन्त चन्द्रकेतु को बन्दी बनाकर नगर के मुख्य द्वार पर पहुँच रहे हैं।"

"भगवान हम पर प्रसन्न है !" महाराज प्रफुल्लित हो उठे और उन्होंने महासेनापति प्रचण्डनाद को पुकारा।

"आज्ञा, सम्राट," कहते हुए, हाथ जोड़े, महासेनापति आगे बढ़े।

"नगर के द्वार पर जाकर सम्राट-पुत्र कुणाल का स्वागत कीजिए और उन्हें आदर के साथ यहाँ लाइए," महाराज ने आदेश दिया।

"जो आज्ञा, महाराज," कहते हुए, सिर झुका, पीछे हट, महासेनापति ने वहाँ से प्रस्थान किया।

धूल के बादल उड़ाता हुआ, अपने कुछ अन्य घुड़सवार साथियों के साथ, तक्षशिला के महासामन्त चन्द्रकेतु को बन्दी बनाए, कुणाल नगर के मुख्य द्वार पर आ पहुँचा। महासेनापति द्वार पर उपस्थित थे।

"सम्राट-पुत्र वीर कुणाल की जय हो ! सम्राट की ओर से आपका स्वागत करने का सौभाग्य मुझे मिला। सम्राट-पुत्र, मेरा प्रणाम स्वीकार करें," महासेनापति ने अभिवादन किया।

कुणाल ने घोड़े की रास खींची। "प्रणाम," उसने कहा। "महा-सेनापति, आज नगर की सड़कें क्यों सुनसान पड़ी हैं ?"

"महारानी तिष्यरक्षिता की आज्ञा से आज प्रजा ने स्वर्गीया माता असन्धिमित्रा की वर्षी मनाई है। चलिए, सम्राट ने आप को माता की समाधि पर बुलाया है। वे वहीं हैं।"

"महारानी तिष्यरक्षिता !" कुणाल ने साश्चर्य कहा। "महारानी तिष्यरक्षिता ने हमारी माता का इतना आदर किया ! महारानी तिष्य महान हैं। माता तिष्य को हमारा प्रणाम।"

प्रेम से गद्‌गद् हो कुणाल ने द्वार पर ही सबके सामने अपनी नई माँ को माथा नवाकर प्रणाम किया, और फिर घोड़े की रास ढीली करदी।

समाधि पर उपस्थित जनों की उत्सुक आँखें वीर कुणाल की प्रतीक्षा में इधर-उधर भटक रही थीं। सहसा भीड़ को चीरता हुआ कुणाल, बन्दी को लिए, आगे बढ़ा और उपस्थित जनसमुदाय ने बड़े उच्च स्वर से उसका जयघोष किया। महारानी कुरुवकी, कांचनमाला और अन्य रानियाँ विजेता कुणाल को अपने बन्दी के साथ देख गर्व से प्रफुल्लित हो उठीं। तिष्यरक्षिता मात्र मंत्रमुग्ध-सी युवक कुणाल को देख रही थी। 'क्या यही है वह कुणाल ?' उसने सोचा। 'कुणाल पक्षी के समान सुन्दर आँखों वाला यह युवक ही क्या वह कुणाल है. . . . .जिसे नष्ट कर देने का मैं संकल्प कर चुकी हूँ ?'

बन्दी को महासेनापति के हवाले कर कुणाल ज्योंही अपने पिता की ओर बढ़ा, उनके साथ खड़ी हुई सुन्दरी तिष्यरक्षिता पर उसकी दृष्टि पड़ी और क्षण भर के लिए वह ठिठक गया। माता आसन्धिमित्रा के निर्वाण पाने के बाद आज पहली बार यह असीम सौन्दर्य वह माता तिष्य में देख रहा था। परन्तु तिष्य की आँखें उसके हृदय में उठने वाले विकार को चाणक्य के शिष्य सोमदेव और बालसखी मेनका से छिपा न सकीं। इसी समय सम्राट ने आगे बढ़ कुणाल को अपने चरणों में गिरने से रोक लिया और उसे गले लगाते हुए बोले : "देवी आसन्धिमित्रा के वीर बेटे का हम बड़े गर्व के साथ स्वागत करते हैं।"

"पिता जी," कुणाल ने गद्‌गद् होते हुए कहा, "नगर के द्वार पर ही कुणाल ने आज प्रतिज्ञा की है कि आज से वह आसन्धिमित्रा

का बेटा नहीं वरन् तिष्यरक्षिता का पुत्र कहलाएगा। आज मुझे अपनी माता मिल गई।"

कुणाल के वचन सुन उपस्थित जनों की आँखें भर आईं। कुणाल ने माता तिष्यरक्षिता के चरणों में झुक कर प्रणाम किया। तिष्य उसे अपने अस्थिर हाथों से उठाती हुई बोली: "तुमने आज मुझे अपना बना लिया, कुणाल।"

"कुणाल नहीं, बेटा कहो, माँ। माँ के मुँह से 'बेटा' शब्द मैंने बहुत दिनों से नहीं सुना।"

तिष्य झिझकी! "बेटा," उसने कहा। परन्तु शब्द उसके होंठों तक आकर ही गल गया; और वहाँ से हटते हुए कुणाल को केवल इतना ही सुनाई दिया: "आज—मैं—बहुत प्रसन्न हूँ—कुणाल—"

समस्त रानियों के आशीर्वाद का पात्र बनता हुआ कुणाल जैसे ही महारानी कुरुवकी के चरणों में झुका, उसे बड़े प्रेम से उठाते हुए महारानी ने महाराज को सम्बोधित करते हुए कहा: "महाराज, मेरा एक निवेदन है। देवी आसन्धिमित्रा सदा न्याय-प्रिय रही हैं। उनकी इस पुण्यतिथि के दिन उन्हीं की समाधि पर महासामन्त चन्द्रकेतु का न्याय हो।"

"महारानी कुरुवकी ठीक कहती हैं," सम्राट ने प्रस्ताव को स्वीकार किया। "हम बन्दी का न्याय करेंगे।" और फिर सहसा कुछ सोचकर वे कुणाल की ओर मुड़कर बोले: "कुणाल, हमारी इच्छा है अपने बन्दी का न्याय तुम स्वयं करो," फिर उपस्थित जन समुदाय से: "आज के दिन तक्षशिला के महासामन्त चन्द्रकेतु के न्याय करने का अधिकार हम सम्राट-पुत्र कुणाल को देते हैं।"

सबने महाराज के इस विचार की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और करतल-ध्वनि और जयघोष से वह विजन प्रान्तर गूँज उठा।

"महाराज परीक्षा ले रहे हैं कुणाल की," महारानी कुरुवकी ने कांचन से धीरे से कान में कहा।

"सम्राट की आज्ञा के आगे कुणाल सिर झुकाता है," कहता हुआ कुणाल मंच पर जा खड़ा हुआ; और समस्त वातावरण न्याय की प्रतीक्षा में निस्तब्ध और शांत होगया।

"महासामन्त चन्द्रकेतु, तुमने मौर्य साम्राज्य के प्रति विद्रोह किया है।"

लोहे की साँकलों में जकड़ा हुआ भारीभरकम चन्द्रकेतु पददलित सर्प की भाँति फुफकार उठा: "जानता हूँ, सम्राट-पुत्र। अपनी मातृ-भूमि को मौर्य-साम्राज्य से स्वतंत्र करने के अपराध में मैं यहाँ पर बन्दी बनाकर लाया गया हूं।"

"हम तुम्हारी आँखें खोलना चाहते हैं, चन्द्रकेतु। तुम्हारा न्याय करने के पहले हम तुम्हें एक बार मित्र बनाना चाहते हैं।"

कुणाल की यह तर्क-युक्ति महाराज को कुछ जँची नहीं और महामंत्री ने देखा कि वे कुछ व्याकुल से प्रतीत होने लगे। बंदी उद्दण्डता पूर्वक कह रहा था: "स्वतंत्रता के लुटेरों से हमारी मित्रता कभी नहीं हो सकती।" यह मिथ्या आरोप कुणाल के लिए असह्य था और चोट खाए हुए सिंह की भांति वह गरज उठा: "कौन तुम्हारी स्वतंत्रता को लूटता है?"

न जाने क्यों नियन्त्र को लगा कि वास्तव में वृद्ध अशोक नहीं युवक कुणाल ही सम्राट है।

"तुम, कुणाल," बन्दी ने उत्तर दिया; "और तुम्हारे पिता सम्राट अशोक—दोनों ही साम्राज्य के भूखे और मनुष्य की स्वतन्त्रता के लुटेरे हैं।"

"यह झूठ है। मौर्यों ने अपना साम्राज्य देश को दास बनाने के लिए नहीं, भारत को स्वतंत्र करने के लिए फैलाया है।"

कुणाल का यह वक्तव्य चन्द्रकेतु पर ऐसा पड़ा मानो चिकने घड़े पर पानी। "यदि तुम सत्य कहते हो तो हमारे देश को स्वतंत्र क्यों नहीं होने देते ?" उसने पूछा।

"देश तुम्हारा नहीं, सबका है।"

"तक्षशिला हमारी है।"

"नहीं, तक्षशिला भारतवर्ष की है," कुणाल ने निश्चित रूप से उत्तर दिया। "तक्षशिला, भद्रक, काशी, कौशल, आंध्र अंग, वंग, कलिंग, मगध—ये सब पवित्र भारत भूमि के छोटेबड़े खण्ड हैं—भारत से अलग होकर नहीं रह सकते।"

युवक कुणाल के इस ओजस्वी तर्क ने सबको चमत्कृत कर दिया; और युवती तिष्यरक्षिता के हृदय में हल्का-हल्का दर्द उठने लगा।

"यह ठीक है, परन्तु अपनी पवित्र तक्षशिला को सब से अलग रख कर हम उसे स्वतंत्र करेंगे," बन्दी ने हठ पूर्वक कहा।

"बच्चों जैसी बातें न करो, चन्द्रकेतु। अपने सिर को धड़ से अलग कर भला तुम जीवित रह सकते हो ?.....बोलो ?" कुणाल ने पूछा।

बन्दी निरुत्तर हो दाएँ-बाएँ झाँकने लगा।

"उत्तर दो," कुणाल गरज उठा।

"नहीं," बन्दी ने सहम कर कहा।

"हाथ, पैर, सिर, धड़ अलग कर देने से कोई जीवित रह सकता है ?"

"नहीं, कुमार।"

"फिर तुम देश के टुकड़े-टुकड़े करके देश को कैसे जीवित रख सकते हो, चन्द्रकेतु ? जिस प्रकार हाथ, पैर, सिर सब स्वतंत्र होते हुए भी एक देह से जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार ये सारे प्रांत भी एक देश से जुड़े हुए हैं। उसके खण्ड-खण्ड कर देने से हमारा देश मर जाएगा,

और उसके साथ ही साथ हमारे देश की स्वतंत्रता भी——काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और सौराष्ट्र से लेकर बंग और ब्रह्मदेश तक भारतवर्ष अखण्ड है। यह अखण्ड भारत है।"

पिता के ओजस्वी भाषण से प्रभावित होकर कुमार सम्प्रति तालियाँ पीटने लगा। महाराज और राजभक्त सोमदेव आनंद से पुलकित हो उठे। उपस्थित जनता भी अपने को न रोक सकी और मुक्त हृदय से करतल-ध्वनि करने लगी। पति के लिए कांचन की आँखों में प्रेमाश्रु छलक आए। महारानी कुरुवकी गर्व से फूल उठी।

"आप धन्य हैं, सम्राट-पुत्र!" कुणाल के चरणों में पड़ा हुआ बंदी कह रहा था। "आप धन्य हैं! आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैंने सम्राट के प्रति विद्रोह करके बड़ा अपराध किया है। मुझे दण्ड दीजिए।"

"दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा, बन्दी," कहते हुए कुणाल ने बन्दी को मुक्त कर देने के लिए महासेनापति की ओर संकेत किया। "तुम्हें क्षमा किया जाता है," कुणाल ने अपना निर्णय सुनाया।

चन्द्रकेतु को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। "क्षमा?" उसने साश्चर्य पूछा।

"हाँ, क्षमा," सम्राट ने उत्तर दिया और नंगी तलवार लिए वे आगे बढ़े। "यही नहीं, हम तुम्हें दूसरा दण्ड यह देते हैं कि तुम तक्षशिला के महासामन्त बनकर प्रजा की सेवा करते हुए अपने पापों का प्रायश्चित करो।" तलवार चन्द्रकेतु को प्रदान कर महाराज ने उसे महासामन्त के पद पर फिर से नियुक्त किया—और इस प्रकार परम बौद्ध महा प्रतापी अशोकवर्द्धन ने अपने एक और शत्रु को क्षमा और प्रेम से नष्ट कर सदा के लिए मित्र बना लिया।

चंद्रकेतु उन्मत्त की भाँति जयघोष कर उठा: "सम्राट की जय हो! वीर कुणाल की जय हो!"

अवसर उपयुक्त देख महाराज ने समस्त नागरिकों को सम्बोधित करते हुए कहा : "प्रजा के रूप में मेरे पुत्रो ! कुणाल के न्याय से हम बहुत प्रसन्न हुए। तुम्हारा सम्राट अब बूढ़ा हो चला है। हमारी यह इच्छा है कि हमारे बाद मौर्य सिंहासन पर कुणाल बैठे। यदि हमारी प्रजा को कुणाल पर विश्वास है, यदि हमारी प्रजा कुणाल को इस योग्य समझती हो, तो हम प्रजा की अनुमति से कुणाल को अपना युवराज बनाएँगे।"

हर्ष से पागल होते हुए समस्त राज-कर्मचारियों ने एक स्वर से **अपनी अनुमति दी और प्रेम से विह्वल** होती हुई प्रजा ने जयघोष के **साथ उनका अनुमोदन किया।**

कुणाल दोनों हाथ जोड़े महाराज के सामने शीश झुकाए खड़ा था। सम्राट पिता ने गर्व के साथ पुत्र को गले लगाते हुए महामंत्री को आदेश दिया : "युवराज के तिलक का प्रबन्ध हो।"

पाँचवाँ परिच्छेद

स्वर्गीया सम्राज्ञी आग्नन्धिमित्रा की वर्षी के दिवस से ही, जब से युवती तिष्य ने युवक कुणाल को देखा, उसके हृदय में रूपवान कुणाल की मादक आँखों ने घर कर लिया और अपने वृद्ध पति सम्राट अशोक के प्रति एक विरक्ति का भाव वह अनुभव करने लगी। षडयन्त्रकारिणी तिष्यरक्षिता अपने सम्राट पति से धीरे-धीरे सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ले लेने की महत्वाकांक्षा को भूलकर सम्राट के दाएँ, बाएँ हाथ——— युवराज कुणाल और महामंत्री सोमदेव का नाश कर देने के अपने दृढ़ संकल्प को भूल कर अपनी उन दुर्भिसन्धियों को जिनके द्वारा वह मौर्य साम्राज्य की सर्वेसर्वा बनने का सुनहरा स्वप्न देख रही थी, आज पुत्र कुणाल के प्रति वासनामय प्रेम के दावानल में बरबस जली जारही थी।

महल की दीवार पर बने हुए कुणाल के चित्र में खोई हुई तिष्य-रक्षिता बराबर तीसरे पहर से खड़ी थी। महारानी का ध्यान भंग करती हुई मेनका व्यंगपूर्वक बोली : "हार गईं ?"

तिष्य ने चौंककर मेनका की ओर देखा। "हाँ ! तू है ?"

"और आप क्या समझी थीं, युवराज आए हैं ?"

"यह तू क्या कह रही है, मेनका। कुणाल मेरा——— मेरा———"

"रुक क्यों गईं, महादेवी ? कहिए न : कुणाल मेरा बेटा है। सौत का बेटा अपना ही बेटा होता है। और बूढ़े पति की जवान पत्नी का सौतेला बेटा भी जवान होता है, महादेवी।"

"मेनका ! मुझे पागल न बना।"

"तुम्हें तो पागल बना देने वाली कुणाल की मदभरी आँखें हैं।"

"मेनका, तू मेरी सहेली है; जले पर नमक न छिड़क।"

"भूल गईं कि कुणाल तुम्हारा शत्रु है ?"

"नहीं, कैसे भूल सकती हूँ, मेनका; पर जितना सोचा था कुणाल उससे भी बड़ा शत्रु हुआ ! वह मेरा अधिकार ही नहीं, मुझे भी लूट लेगया, मेनका !"

"बावली होगई हो !" मेनका ने मुँह बनाते हुए कहा। अपनी बेबसी पर मुस्कुराती हुई तिष्य ने स्वीकार किया : "प्रेम बना देता है," और फिर कुणाल के चित्र में वह उलझ गई।

पाटलिपुत्र के एक मदिरालय में बैठा बीजगुप्त दिल खोलकर पिए जारहा था। ऊपर नगर की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी रूपजीवा रंजना के पायल की रुनझुन से पात्र में छलकती हुई सुरा विशेष स्वादिष्ट हुई जारही थी।

"एक और," नशे में झूमता हुआ बीजगुप्त पास बैठे कणिक से बोला। "एक और, पाटलिपुत्र की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी रूपजीवा रंजना के नाम पर एक और !"

"पाटलिपुत्र में वेश्याओं का नाम भी कितना सुन्दर होता है ! रूपजीवा !"

"सुन्दरता नाम में नहीं, कणिक, रूप में है। नाम पर दुनिया जीती है और रूप पर वेश्या," कहता हुआ बीजगुप्त उठा और झूमता हुआ सीढ़ियों चढ़ने लगा।

"कहाँ चले, बीजगुप्त ?" नगर सेठी ने पूछा। "ऊपर——रंजना की आग से खेलने," बीजगुप्त ने उत्तर दिया।

पाटलिपुत्र के लब्धप्रतिष्ठ नागरिकों का अपने नृत्य से मनोरंजन करती हुई रंजना मधुर स्वर से गारही थी।

नृत्य के बीच रंजना ने अपने प्रेमी बीजगुप्त को आते हुए देखा और देखकर वह मुस्कुराई। बीजगुप्त के पात्र में दासियाँ बराबर सुरा उँड़ेलती रहीं और उसे यह भान तक न रहा कब नृत्य समाप्त हुआ, कब लोग चल दिए, और कब से रंजना की गोद में पड़ा हुआ वह बड़बड़ाता रहा. . . . .कोई नहीं जानता था, महादण्डपाल बीजगुप्त भी नहीं जानता था कि नर्तकी रंजना महामंत्री सोमदेव की गुप्तचर भी है, तभी तो लोग उसकी ड्योढ़ी पर आकर, नशे में, अपने दिल की सब कुछ सुना जाया करते थे, और वह सब कुछ कुशल रंजना द्वारा महामंत्री तक पहुँच जाया करता था।

आज बहुत दिनों बाद रंजना को यह सुअवसर प्राप्त हुआ जबकि बीजगुप्त के दिल का भेद उस पर सहज ही में प्रगट होने जारहा था।

"मन के तारों पर पायल की झंकार—झुनुन-झुनुन-झुनुन वाह! उँड़ेलती जाओ, रंजना," बीजगुप्त बड़बड़ा रहा था। "आज तो जी भर के पीऊँगा तुम्हारे जैसी सुन्दरी के हाथों. . . . ."

रंजना मुस्कुराई और हलके-हलके उसके बालों पर अपना कोमल हाथ फेरती हुई बोली : "क्या मैं सच बहुत सुन्दर हूँ, महादण्डपाल?"

नशे में बन्द होती हुई बीजगुप्त की आँखें कुछ खुलीं। "तुम नहीं जानतीं. . . . .तुम मेनका से भी सुंदर हो. . . . .तिष्यरक्षितासे भी सुंदर हो। मैं तुम्हें. . . . .मेनका से भी अधिक. . . . .प्यार. . . . .क...र... ता...हूँ..."

बीजगुप्त का सिर रंजना की गोद में सहसा भारी हो गया। बीजगुप्त नशे में बेसुध सोरहा था। 'मेनका!' रंजना ने साश्चर्य अपने आपसे कहा। 'मेनका. . . . .तिष्यरक्षिता की दासी मेनका!. . . . .तो इसकी वहाँ भी पहुँच होगी। बीजगुप्त का सिर धीरे-से तकिये पर टिका रंजना वहाँ से धीरे-धीरे हटने लगी।

पूर्णिमा का चाँद आकाश के ठीक मध्य में आ पहुँचा था। झरोखे से छनछन कर आती हुई चाँदनी युवती तिष्य के अरुण कपोलों को चूम रही थी। वाटिका के असंख्य पुष्पों की मादक सुरभि को अपने आँचल में लिए पवन के मंद-मंद झोंके शयनागार में प्रवेश कर तिष्य को छेड़ रहे थे। अपने अतृप्त हृदय में उठती हुई टीस को दबाती हुई तिष्य मुस्कुराई और उठ खड़ी हुई। एक हलकी सी अंगड़ाई लेकर वह बाहर छत पर आई और शीतल चाँदनी से नहाए हुए आकाश में काले-काले बादलों पर चाँदी के थाल की नाईं ढुलकते हुए चाँद को अपनी अलसाई आंखों से देखने लगी। सहसा उसकी भटकती हुई आँखें कुणाल के शयनागार की छत पर जा टिकीं : खुली हुई खिड़की से छन कर आते हुए प्रकाश में उसने देखा कुणाल और कांचन, एक दूसरे को बाहुपाश में बाँधे, प्रेमालाप कर रहे थे। तिष्य का हृदय आंदोलित हो उठा। यदि उसका बस चलता तो वह इसी समय कुणाल को लेकर दूर कहीं दूर, भाग जाती—जहाँ उन दो के सिवा और कोई न होता—कांचन भी नहीं.....बस वह होती और उसका कुणाल। सहसा उसे कुछ सूझा और वह शय्या पर महाराज के पास आ लेटी। महाराज सो रहे थे। तिष्य, आँखें मूँद, सोने का स्वांग करती हुई मानों स्वप्न में बड़बड़ा उठी : "नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। मैं वचन देती हूँ.....हाँ, बहन.....अवश्य, मैं दीक्षा लूँगी ——"

महाराज हड़बड़ा कर उठ बैठे। "तिष्य ! प्रिये !" उन्होंने पत्नी को जगाते हुए कहा।

तिष्य ने आँखें खोल दीं। "हाँ, स्वामी," उसने कहा।

"क्या हुआ, प्रिये ? क्या कोई बुरा स्वप्न देख रही थीं ?" ?

"स्वप्न !.....हाँ, प्रभो। परन्तु वह बुरा नहीं था। वह मेरे सौभाग्य का स्वप्न था। और वह सौभाग्य मुझे बहन आम्रपालिमित्रा ने दिया है !"

"तुमने आमन्धि को स्वप्न में देखा ?" महाराज ने साश्चर्य पूछा।

"हाँ, स्वामी। मेरी बहन ने एक आज्ञा दी है, नाथ।"

"वह क्या, प्रिये ?" अधीर होकर महाराज ने पूछा।

"उन्होंने कहा कि तुम शीघ्र से शीघ्र बुद्ध-गया जाकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा लो. . . . .मैं दीक्षा लूँगी, महाराज।"

महाराज आनन्द से पुलकित हो उठे और तिष्य को बड़े प्रेम से अपने बाहुपाश में लेते हुए उन्होंने कहा : "प्रिये ! तुमने हमें बड़ा ही शुभ समाचार सुनाया। हम कल ही दीक्षा के लिए प्रबन्ध करेंगे।"

"और, प्रभो ! इस पवित्र यात्रा में मेरा कुणाल मेरे साथ जाएगा।"

"तिष्य ! तुम आमन्धिमित्रा की तरह ही महान हो। हम कल ही कुणाल के साथ तुम्हारे बुद्ध-गया जाने की व्यवस्था करेंगे; और इस शुभ अवसर पर आमन्धिमित्रा की सूनी जगह पर हम तुम्हें सम्राज्ञी बनाएँगे——कल से तुम महारानी तिष्यरक्षिता नहीं साम्राज्ञी तिष्य-रक्षिता कहलाओगी।"

कृतज्ञता का कृत्रिम भाव दर्शाती हुई तिष्य पति के पैरों से लिपट गई परंतु उसका हृदय हर्ष और विजय के मारे बाँसों उछल रहा था।

दूसरे दिन कांचनमाला पति से बोली : "पिताजी ने माता तिष्यरक्षिता को सम्राज्ञी का पद दिया है।"

"उन्होंने ठीक ही किया है, कांचन। माता तिष्यरक्षिता सम्राज्ञी के पद के योग्य हैं, वे बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले रही हैं।"

"मुझे तो इसमें उनकी कोई चाल दिखाई देती है।"

इसीसमय दासी ने घोषित किया : "युवराज की जय हो ! सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता पधारी हैं।"

"सम्राज्ञी !" कांचन ने साश्चर्य पति की ओर देखकर कहा।

"माता !" कुणाल दासी से कह रहा था। "हमें पहले से सूचना क्यों नहीं दी गई ?"

भीतर प्रवेश करते हुए तिष्य ने उत्तर दिया : "सूचना मैंने ही नहीं दी, कुणाल। माँ अपने बेटे से मिलने आई है, इसमें सूचना देने की क्या बात थी ?"

"यह हमारा सौभाग्य है," प्रणाम करती हुई कांचन बोली, "परंतु महलों का नियम——"

"महलों का नियम !" तिष्य ने बात काटी। "माँ और बेटे के मिलने के लिए कहीं भी, कोई भी नियम नहीं बाँधा जा सकता। मैं तुम्हारे पति को लेने आई हूँ, कांचन।"

कांचन को कनखियों से ताकती हुई तिष्य मुस्कुरा रही थी।

"मैं समझी नहीं, माताजी," सतर्क होकर कांचन ने तीक्ष्ण स्वर में कहा।

तिष्य खिलखिलाकर हँस पड़ी। कुणाल के पास जाते हुए उसने कहा : "दीक्षा लेने मैं बुद्ध-गया जा रही हूँ.....और तुम मेरे साथ चलोगे, कुणाल।"

"मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ, माता जी," आज्ञाकारी पुत्र कुणाल ने उत्तर दिया।

"नहीं, कुणाल, सौभाग्य मेरा है—मेरी यात्रा में तुम मेरे साथी बनोगे !"

कांचन ने देखा उसका भोला पति कदाचित रहस्यमयी तिष्य का अर्थ बराबर नहीं समझ पाया, तभी तो वह कह रहा था : "माता की आज्ञा हमारे लिए पत्थर की लकीर है।"

अपने आदेश पर कुणाल को सिर झुकाते देख तिष्य ने एक गर्वभरी दृष्टि कांचन की ओर डाली और लौटते हुए उसने कहा : "सुना

कांचन ? पत्थर की लकीर और भाग्य की रेखा कोई नहीं मिटा सकता।''

कांचन की छाती पर पत्थर फूट पड़ा। तिलमिलाकर उसने उत्तर दिया : ''हाँ, महादेवी ! मेरे सौभाग्य-सिन्दूर की लकीर को भी उसी तरह कोई नहीं मिटा सकता।''

भोलीभाली कांचन के मुँह से निकली हुई चिनगारी ने एक क्षण के लिए तिष्य को स्तम्भित कर दिया, परंतु अनुकूल स्थिति न समझ तिष्य मुस्कुराती हुई वहाँ से चल दी।

''तुमने चलते-चलते माँ से यह क्या कहा, कांचन ?'' कुणाल ने पत्नी से पूछा।

''एक स्त्री ने दूसरी स्त्री की बात का उत्तर दिया था। आप पुरुष हैं स्त्रियों की बातें नहीं समझ सकते,'' कांचन ने भर्राए हुए स्वर से कहा और फिर पति के छाती पर सिर टिका वह सिसकने लगी।

गया में पवित्र गंगा के तीर पर युवराज कुणाल ने पड़ाव डाल रखा है। समीपवर्ती बोधिमन्व के नीचे महास्थविर बौद्ध-भिक्षुओं को लिए कुणाल तथा उसके साथ आए हुए असंख्य सैनिकों के सामने सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता को बौद्ध-धर्म की दीक्षा दे रहे हैं। युवराज कुछ उद्विग्न से प्रतीत होरहे हैं; मार्ग में होने वाली कुछ घटनाओं से वे तिष्य के सम्बन्ध में आशंकित होरहे हैं, गया-यात्रा का वास्तविक अभिप्राय उनकी समझ में आने लगा है, दीक्षा की ओट में तिष्यरक्षिता कुणाल के लिए जो जाल बिछा रही है उसे वे भली भाँति देख रहे हैं।

''कर्म और अहिंसा से मनुष्य अपनी आत्मा के दर्शन कर निर्वाण-पद पाता है,'' महास्थविर सम्राज्ञी को उपदेश दे रहे हैं। ''जीव-मात्र में एक ही आत्मा को देखो। यही सत्य है; और सत्य को पाने के लिए

काम, क्रोध, लोभ, मोह को त्याग कर भगवान बुद्ध की शरण में आओ।''

"बुद्धं शरणं गच्छामि,' भक्ति-पूर्वक दोनों आँखें बंद किए हुए तिष्य ने कहा, "धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।''

तिष्य के बाएँ कंधे पर पड़े हुए उत्तरीय को दाएँ कंधे पर रखते हुए महास्थविर ने आशीर्वाद दिया : "तथास्तु ! भगवान तथागत तुम्हारा कल्याण करेंगे।''

अचानक दूर कोई अट्टहास कर उठा। तिष्य और कुणाल चौंक कर उस ओर देखने लगे। पीपल की छाया में चबूतरे पर बैठा हुआ एक विकट रूपधारी अवधूत किसी सैनिक की हस्तरेखा देखकर कह रहा था : "जो अपना कल्याण नहीं कर सकता उसका कल्याण भगवान भी नहीं करते। सत्यघोष नागार्जुन का गुटका कभी असत्य नहीं होगा। पुत्र, तू अपनी स्वामिभक्ति से एक दिन महासेनापति बनेगा।' भविष्यवाणी सुनकर सैनिक अवाक् रह गया।

तिष्य के मन में कौतूहल हुआ। "कुणाल,' उसने युवराज से कहा, "मैं इस ज्योतिषी से अपने और तुम्हारे संबंध में कुछ पूछना चाहती हूँ, इसे बुलाओ।'

"जो आज्ञा, माता जी,'' कहते हुए कुणाल ने अभी सिर झुकाया ही था कि वह अवधूत ज्योतिषी उनकी ओर आता हुआ बड़बड़ा उठा : "मैं आप ही तेरे पास आ रहा हूँ तिष्यरक्षिता।''

तिष्य को आश्चर्य हुआ। "इसने इतनी दूर से हमारी बात सुन कैसे ली ?'' दबे हुए स्वर में उसने कुणाल से पूछा।

परन्तु उत्तर कुणाल ने न देकर पास आते हुए ज्योतिषी ने दिया। "क्योंकि मेरा मन पाप की छाया से दूर होकर सबके मन को अपने में देखता है,'' उसने कहा और फिर सिन्दूर से अनुरंजित अपने प्रचण्ड

त्रिशूल को धरती में बड़े ज़ोर से गोदता हुआ बोला : "तिष्य नक्षत्र भी तेरी रक्षा न कर सकेगा, तिष्यरक्षिता। सत्यघोष नागार्जुन का गुटका कभी असत्य नहीं हो सकता। तुझसे भी बड़ा संसार में कोई है, इसे न भूलना। आग से न खेलना, नहीं तो एक दिन आग ही तेरे इस रूप को जलाकर राख कर देगी।"

सम्राज्ञी का अपमान होते देख कुणाल ने ज्योतिषी को रोकना चाहा। "ज्योतिषाचार्य !" उसने फटकारा।

"मैंने यह सुनने के लिए आपको नहीं बुलाया," तिष्य घायल नागिन की भाँति फुफकार उठी।

"परन्तु मैं यही सुनाने के लिए यहाँ आया हूँ। अब भी कुछ पूछना चाहती है ?"

तिष्य का कौतूहल बढ रहा था। "पूछूँगी," उसने कहा।

ज्योतिषी फिर अट्टहास कर उठा। "अपनी बात छोड़कर अब कुणाल का भविष्य जानना चाहती है ! तो सुन——कुणाल एक दिन अपनी इन आँखों को खोकर ज्ञान की सुन्दर आँखें पाएगा। कुणाल मौर्य-सिंहासन पर न बैठेगा।"

उपस्थित जन सहम उठे। तिष्य के पैर डगमगाने लगे। उसने कुणाल के कन्धे का सहारा लिया। कुणाल अविचलित खड़ा मुस्कुरा रहा था। काँपते हुए स्वर में तिष्य ने ज्योतिषी से पूछना चाहा : "तो क्या युवराज——"

"हाँ, युवराज कभी सम्राट नहीं होंगे। अशोक के बाद कुणाल का पुत्र गद्दी पर बैठेगा, कुणाल नहीं।"

"यह झूठ है," तिष्य बोली।

अवधूत ज्योतिषी खिलखिलाकर हँस पड़ा। "सत्यघोष नागार्जुन का गुटका कभी झूठ नहीं हो सकता," कहता हुआ वहाँ से वह चल पड़ा।

पीपल की ओट में ओझल होते हुए ज्योतिषी को तिष्यरक्षिता कुछ देर तक देखती रही, फिर कुणाल के साथ वह शिविर की ओर चल पड़ी। "जान पड़ता है कोई पागल था," उसने मार्ग में कुणाल से कहा।

"कौन ?" कुणाल ने भाव-रहित मुद्रा से पूछा।

तिष्य निरुत्तर थी। कुणाल की ओर देखने का साहस उसमें नहीं था। उसके हाथ का सहारा लिए वह चुपचाप चली जा रही थी।

रात अभी अधिक नहीं हो पाई है। गंगा के तीर पर पड़े हुए पड़ाव के असंख्य शिविरों में जगमगाते हुए दीपक तरंगमालाओं से आंदोलित अनन्त जलराशि में प्रतिबिम्बित हैं। समस्त वातावरण बिलकुल शांत और निस्तब्ध है। "तीर्थ में आकर मन को कैसी शांति मिला करती है, माधव," युवराज के शिविर पर पहरा देते हुए सैनिक ने अपने साथी से कहा। "जिस जगह भगवान बुद्ध को शांति मिली वहाँ भला भगवान के भक्तों को क्यों नहीं मिलेगी ?" साथी बोला।

"मुझे अभी भी शांति नहीं मिली, मेनका !" सम्राज्ञी अपने शिविर में कह रही थी। "मेरे रोम-रोम में जो आग लग रही है उसे कुणाल ही बुझा सकता है।"

"तो फिर जाती क्यों नहीं ?" मेनका ने व्यंग-पूर्वक पूछा।

"कैसे जाऊँ ? पाँव डगमगाते हैं।"

"इससे अच्छा अवसर तुम्हें फिर न मिलेगा, महादेवी ! चाँदनी रात, नदी का किनारा, पवित्र तीर्थ और माँ का अपने बेटे से प्रेम की भीख माँगना ——"

"मेनका !"

"कुणाल का प्यार तुम्हें कुछ भी न दे सकेगा। ज्योतिषी ने कहा है, वह सम्राट भी नहीं बनेगा।"

"परन्तु उसका बेटा तो बनेगा।"

"तो उससे तुम्हें क्या? राजमाता बनेगी सम्प्रति की माँ, कांचनमाला।"

"नहीं, सम्प्रति गद्दी पर नहीं बैठेगा," आवेश में आकर सम्राज्ञी बोली; "मेरे गर्भ से कुणाल का बेटा मौर्य-वंश का कुल-दीपक बनेगा।" तिष्य के मन में उठते हुए भूचाल ने एक निश्चित रूप ले लिया था। उसने निश्चय कर लिया था कि पाटलिपुत्र लौटने से पहले वह कुणाल को अपने रूप और यौवन के द्वारा झुका देगी और यदि वह न झुका, जिसकी उसे रह-रह कर आशंका होती थी, तो वह अपने मान, अपमान और मर्यादा की अवहेलना कर स्वयं प्रकट रूप से उससे प्रेम-भिक्षा माँग लेगी।

तिष्य आँधी की तरह उठकर अपने शिविर से कुणाल के शिविर की ओर बढ़ चली.....

कुणाल की आँखों में नींद न थी। तिष्य की ओर से वह आशंकित हो उठा था। शय्या पर लेटे हुए कुणाल की थकी हुई आँखें शिविर में इधर-उधर भटक रही थीं। कांचन के हृदय से निकले हुए उद्गार उसे याद आ रहे थे। 'मुझे तो इसमें भी उनकी कोई चाल दिखाई देती है,' कांचन ने कहा था। और अब बुद्ध-गया में आकर वह प्रत्यक्ष देख रहा था कि तिष्य किस तरह अपनी वासना की ज्वाला से उसके दाम्पत्य-जीवन को झुलस देना चाहती है।

सहसा उसकी दृष्टि द्वार पर खड़ी तिष्य पर पड़ी। तिष्य उसकी ओर भेदभरी दृष्टि से ताकती हुई मुस्कुरा रही थी।

"माता! आप!" अपनी आँखों पर विश्वास न करते हुए कुणाल के मुँह से बरबस निकल पड़ा। "आप इस समय मेरे शिविर में!"

"हाँ, कुणाल। मैं—इस समय—तुम्हारे शिविर में!" कुणाल के बहुत निकट आते हुए तिष्य ने उत्तर दिया।

कुणाल उठ बैठा। "आप चाहती क्या हैं?" उसने पूछा। "इस तरह आप मेरे पीछे क्यों पड़ी हुई हैं?"

"इसका उत्तर अपनी इन सपनों भरी आँखों से पूछो, कुणाल, जिन्होंने मेरे अङ्ग-अङ्ग में आग लगा दी है।"

"सम्राज्ञी! यह आप क्या कह रही हैं! आप मेरी——"

"हाँ, मैं तुम्हारी हूँ, कुणाल," तिष्य ने कुणाल के अधूरे वाक्य को अपने ढंग से पूरा किया और मदमाती घटा की तरह कुणाल पर वह घिर आई; "और सदा तुम्हारी ही रहूँगी। तुम्हारे बिना, तुमसे दूर अब नहीं रहा जाता!" तिष्य की गरम साँसों में वासना की गंध थी।

कुणाल उठकर अलग जा खड़ा हुआ। "माता!" उसने कहा। "माता!"

"माता नहीं, तिष्य कहो, कुणाल, तिष्य।"

"तिष्यरक्षिता! तुम चली जाओ यहाँ से। तुम्हारी लाज मौर्य-साम्राज्य की लाज है, तुम्हारा मान मेरे पिता का मान है।"

तिष्य भी उठकर खड़ी होगई और कुणाल के गले में अपनी दोनों बाँहें डालकर कहने लगी: "जाऊँगी, चली जाऊँगी, मेरे देवता। साँप की आँखों-सी मोहिनी लिए हुए तुम्हारे ये विष भरे नैन एक बार मेरे रूप को डस लें—मैं चली जाऊँगी।" कुणाल ने अपने गले में पड़े हुए तिष्य के दोनों हाथ झटक दिए। "क्या मैं तुम्हारे योग्य नहीं?" तिष्य ने रुँधे हुए स्वर से पूछा। "क्या मैं इतनी सुन्दर नहीं?" तिष्य की आँखें डबडबा आईं।

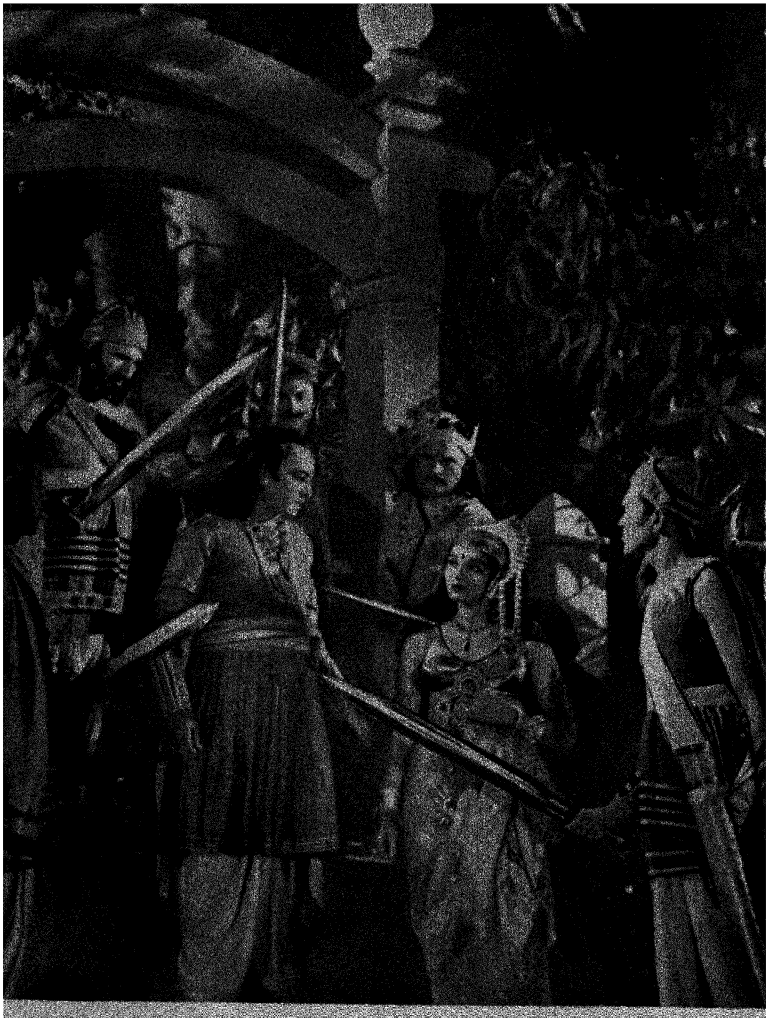
कुणाल, अविचलित खड़ा, तिष्य के असीम सौंदर्य के आवरण में छिपी हुई कलुषित आत्मा की थाह ले रहा था। "तुम सुन्दर हो, तिष्यरक्षिता," कुणाल ने व्यंग के साथ कहा, "बहुत सुन्दर। जी चाहता है कि——"



कुणाल: "'माता' शब्द की पवित्रता पर तुमने कीचड़ उछाली है। मौर्य कुल पर तुम गाज बन कर गिरी हो!"

(शोभना समर्थ, किशोर साहू)

पृ० ५३



इससे पहले कि कुणाल उन षड्यंत्रियों का अपनी तलवार से सामना करे उसकी म्यान से बीजगुप्त तलवार खींच चुका था और दूसरे ही क्षण उसने देखा कि बहुतसे सशस्त्र सैनिक उसे घेरे खड़े थे। (किशोर साहू, शोभना समर्थ आदि) पृ० ६१

तिष्य अपने उत्सुक अधर कुणाल के और भी पास ले जाती हुई बोली : "क्या जी चाहता है, कुणाल ?"

"कि तुम्हारी छाती में छुरा भोंक दूँ, तुम्हारा गला घोट दूँ।"

"कुणाल !" तिष्य के मुँह से निकल पड़ा और उसकी डबडबाई आँखों से आँसू ढुलकने लगे।

" 'माता' शब्द की पवित्रता पर तुमने कीचड़ उछाली है ! मौर्य-कुल पर तुम गाज बनकर गिरी हो !"

"पत्थर न बनो, कुणाल ! मेरी ओर देखो। क्या तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती ?"

"आती है—उसी तरह जैसे दीपक को पतिंगे की नासमझी पर दया आती है, जैसे पत्थर पर अपना सिर पटकने वाले अज्ञानी के ऊपर पत्थर को दया आती है, जैसे न्याय के अपराधी पर मौत को दया आती है," घृणा के आवेश में कुणाल ने कहा और प्रहरी को बुलाने के लिए घंटा बजा दिया। सशस्त्र प्रहरी ने तुरन्त ही प्रवेश किया। "शिविर उखाड़ दो," कुणाल ने उसे आज्ञा दी। "सम्राज्ञी की इच्छा है कि अभी—इसी घड़ी पाटलिपुत्र को कूच किया जाय।"

"जो आज्ञा," कह कर प्रहरी वहाँ से चला गया।

युवराज और सम्राज्ञी, निश्चल मूर्ति की तरह खड़े, एक दूसरे की ओर देख रहे थे। अखण्ड मौर्य-साम्राज्य की सम्राज्ञी, तिष्यरक्षिता, को युवराज कुणाल ने आज निराश किया था, तिरस्कृत किया था, अपमानित किया था.....

तारों भरी रात की उस नीरव शांति को भंग करता हुआ कूच का डंका बज उठा।

और तिष्यरक्षिता के अवाक नेत्रों में आँसू सूखने लगे।

छठा परिच्छेद

राजवाटिका के ताल पर बने हुए काठ के सुन्दर पुल पर खड़ी हुई तिष्यरक्षिता ताल की मछलियों को चुगा रही थी। पास ही थाल में मछलियों का भक्ष्य लिए मेनका खड़ी थी। उस निर्जन वाटिका में बिलकुल सन्नाटा था। केवल दाना फेंकती हुई तिष्य की चूड़ियों की खन-खनाहट और दाना झेलने के लिए उछलती हुई मछलियों की कुलबुलाहट से दुपहरी की वह निस्तब्धता रह रह कर झंकृत हो उठती थी।

"उँह, भोली मछली! इन्हें चारा डाल कर कोई भी जाल में फाँस ले," तिष्य ने मेनका से कहा।

"इस पर हमारी सम्राज्ञी तो जाल फैलाने में बड़ी कुशल हैं।"

"कुणाल और सोमदेव जब तक मेरे जाल में नहीं आएँगे," तिष्य सहसा गम्भीर होकर बोली, "मुझे चैन न आएगा। महाराज बीमार हैं। राज्य की बागडोर इस समय मेरे हाथ में है। मछली फाँसने का यही अवसर है.....तेरा बीजगुप्त अभी तक नहीं आया, मेनका?"

इसी समय मेनका ने देखा कि ताल के किनारे, आम्र वृक्षों की सघन छाया में, कुछ मछुओं को लिए बीजगुप्त चला आ रहा है। "वे आगए!" उसने सूचित किया।

"सम्राज्ञी की जय हो!" महादण्डपाल बीजगुप्त ने पास आकर सम्राज्ञी को अभिवादन किया। "ताल के लिए एक नई मछली लेकर आया हूँ।"

मछुओं के कंधों से लटकी हुई डोंगी में, सम्राज्ञी ने देखा, एक विशाल काय मछली पड़ी हुई छटपटा रही है। "सुंदर! अति सुन्दर!" उसने कहा।

मछुए मछली ताल में छोड़ वहाँ से चल दिए। जाते हुए मछुओं की ओर देखती हुई तिष्य बोली : "इन मछलियों से मुझे सन्तोष नहीं होगा, महादण्डपाल !"

"धीरज रखिए, सम्राज्ञी। अबके वह जाल फैलाया है कि एक ही साथ दोनों मछलियाँ लपेट लूँगा।"

"सोमदेव को अभी छोड़ दो। बाद, उसमें मैं ही समझ लूँगी। पहले युवराज कुणाल को फाँसो।"

बीजगुप्त मुस्कुराया। "समझ गया, सम्राज्ञी। उनके लिए तो मेरे पास एक बढ़िया फंदा तैयार है।"

उत्सुकता से अधीर हो तिष्य ने पूछा : "क्या ? मैं भी सुनूँ।"

"महासेनापति प्रचण्डनाद की पुत्री, देवप्रिया।"

सम्राज्ञी को आश्चर्य हुआ। "कैसे ?" उसने कहा। "कैसे ?"

महादण्डपाल फिर मुस्कुराया, और अपने षड्यंत्र की अनोखी योजना धीरे-धीरे समझाने लगा.....

महासेनापति प्रचण्डनाद की बेटी, देवप्रिया, अपनी वाटिका में बैठी फूलों का हार गूँथ रही थी। किसी समय, जब कुणाल की स्वर्गीया माता आसन्धिमित्रा जीवित थीं, उन्होंने अपनी ओर से अपने कुणाल की पत्नी के लिए देवप्रिया को निश्चित-सा कर लिया था। परन्तु सम्राज्ञी आसन्धिमित्रा की मृत्यु के बाद सम्राट के, कौटिल्य के शिष्य महामंत्री सोमदेव की इच्छानुसार, कुणाल का ब्याह कांचनमाला के साथ करवा दिया था। देवप्रिया मन में कुणाल को अपना पति मान चुकी थी; पर बिचारी का सपना अधूरा ही रहा। इस तरह हृदय पर भारी आघात पा एक भारतीय ललना के उच्चतम आदर्श को रखते हुए उसने अपने कुणाल की याद में आजन्म अविवाहित रहने का संकल्प

कर लिया था। उस निर्जन वाटिका में बैठी हुई देवप्रिया हार गूँथने में खोई हुई थी। अचानक एक अपरिचित युवती उसके पास आई और बोली : "कुमारी, आज तो मैं तुमसे उपहार लूँगी। ऐसा समाचार लाई हूँ कि आप मारे आनन्द के नाच उठेंगी।"

"तू कौन है, पगली ?" देवप्रिया ने पूछा। "मेरे लिए तू कौनसा ऐसा सुख-समाचार ला सकती है ! मुझे तो केवल दो ही सुखी कर सकते हैं—एक तो यमराज, दूसरे युवराज।"

"हाँ, कुमारी, युवराज ने ही आपको याद किया है।"

"कुणाल ने ! मुझे !"

महादण्डपाल बीजगुप्त की भेजी हुई धृतिका ने कृत्रिम समवेदना दिखाते हुए कहा : "इसमें अचरज की क्या बात है ? आठ वर्षों से आप जिनके नाम की माला जपती हैं, जिनके लिए आपने विवाह तक नहीं किया, वे युवराज यदि आज पसीज गए तो कोई बड़ी बात नहीं। इतनी तपस्या करने पर तो भगवान भी प्रसन्न हो जाते हैं, कुमारी। उन्होंने आप को माधवी-कुंज में बुलाया है।"

"माधवी-कुंज में ? कब ?"

"चन्द्रोदय पर।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। इतने दिनों तक मेरा जीवन नष्ट करने के बाद आज उन्हें मेरी सुधि आई ! क्या मैं कांचन से कुछ बुरी थी जो मुझसे विवाह नहीं किया ?"

"पर आज युवराज अपनी भूल को मानते हैं, कुमारी; इसीलिए तो उन्होंने आप को बुलाया है और उन्होंने कहा है कि यदि आज देवप्रिया नहीं आई तो मुझे बड़ा दुख होगा।"

धृतिका ने देखा देवप्रिया की आँखें सजल हो आईं। उमड़ते हुए प्रेमाश्रुओं को रोकने की चेष्टा करती हुई देवप्रिया कह रही थी :

"नहीं, मैं अपने देवता को दुखी देखना नहीं चाहती. . . . चलूँगी।"

उसी दिन संध्या समय नगर की रक्षा का प्रबन्ध देखने के लिए कुणाल जैसे ही बाहर निकलना चाहता था कांचनमाला पास आई और पति से बोली : "मेरी एक प्रार्थना सुनेंगे आप ?"

"मैंने आज तक तुम्हारी कौनसी बात नहीं मानी, कांचन ?" कांचन का हाथ सप्रेम अपने हाथों में लेते हुए कुणाल ने पूछा। "क्या कहना चाहती हो ?"

"बुद्ध-गया की घटना के बाद तिष्यरक्षिता आपसे अवश्य बदला लेना चाहेगी, वह बड़ी नीच स्त्री है।"

कुणाल हँसा। "फिर भी वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती, प्रिये," उसने कहा।

"परन्तु आपको सदा सावधान रहना चाहिए। मुझे तो अब सम्प्रति के लिए भी बहुत चिन्ता होगई है। वह दुष्टा किसी दिन मेरे लाल को——"

"नहीं, कांचन, तुम चिन्ता न करो। मेरे रहते वह सम्प्रति की परछाईं को भी हानि नहीं पहुँचा सकती। अच्छा, समय हो चला, मैं नगर की रक्षा का प्रबन्ध देखने जाता हूँ।"

कांचन ने पति को रोक कर कहा : "न जाने क्यों आज मेरा जी घबरा रहा है, भगवान सब कुशल करें।" पत्नी का सिर प्रेमपूर्वक अपने हाथों में ले कुणाल ने आश्वासन दिया : "डरो मत, कांचन। भगवान के न्याय में सदा सत्य की ही जय होती है," और फिर वहाँ से वह चल दिया।

द्वार की ओर जाते हुए पति को कांचन देखती रही और फिर उसके हृदय की धड़कन महसा बढ़ने लगी।

उदय होते हुए चाँद की शीतल चाँदनी वाटिका में बिखर रही थी। युवराज का घोड़ा सघन पेड़ों की लम्बी छाया में चला जारहा था। सहसा कुन्ज की ओट में कुछ आहट हुई। "युवराज! युवराज!" कोई उन्हें पुकार रहा था। युवराज ने घोड़ा रोक लिया, और देखा मेनका घबराई हुई, सहमी हुई दौड़ी आरही है। "कौन, मेनका?" कुणाल ने पूछा।

"सर्वनाश होगया!"

"क्या होगया?"

"सम्राज्ञी के प्राण संकट में हैं। आपको उन्होंने बुलाया है। ऐसे अवसर पर आप जैसा पुत्र ही उनकी रक्षा कर सकता है। मैं आपसे विनती करती हूँ, माता निष्परिचिता की रक्षा कीजिए।" मेनका सिसकने लगी। "कहाँ हैं माता जी?" कुणाल ने पूछा।

"माधवी-कुन्ज में.....आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। ठीक चंद्रोदय पर मिलने को कहा है।"

"परन्तु माधवी कुन्ज में क्यों?"

"आह! जल्दी चलिए नहीं तो उनके प्राण——"

"अच्छी बात है, मैं अभी चला," कहते हुए कुणाल ने घोड़े को एड़ मारी और तीर की तरह वहाँ से वह चल पड़ा।

गीली पलकों की ओट में चतुर मेनका की चपल आँखें विजयोल्लास से चमक उठीं।

माधवी-कुन्ज में देवप्रिया कुणाल को ढूँढ रही थी। कुणाल ने उसे चन्द्रोदय पर मिलने को कहा था। अपने देवता से वह आज वर्षों बाद मिलेगी। ताल के किनारे बनी हुई संगमरमर की सीढ़ियों पर बैठी वह प्रतीक्षा की आकुल घड़ियाँ गिनने लगी। आसपास के

विभिन्न पुष्पों की मादक सुरभि उसके सुनहरे सपनों को सुवासित कर रही थी।

झाड़ी की ओट में छिपी हुई तिष्यरक्षिता, देवप्रिया की दशा पर मन ही मन हँस रही थी। 'आज मेरी अभिलाषा पूरी होगी,' उसने अपने आपसे कहा।

बीजगुप्त, नंगी कटार लिए, सघन पेड़ों की काली छाया में, दबे पाँव, देवप्रिया की ओर बढ़ रहा था। तिष्य का हृदय उछलने लगा। देवप्रिया, चाँद की ओर ताकती हुई, बीजगुप्त की ओर पीठ किए, बैठी थी। सहसा उसकी पीठ में असह्य पीड़ा हुई, उसे भास हुआ उसका हृदय बन्द होरहा है। एक हृदय-द्रावक चीत्कार के साथ वह सीढ़ियों पर ढुलक पड़ी।

चीख़ सुनते ही कुणाल के कान ठनके। एक अज्ञात आशंका से सिहर कर कुणाल घोड़े से नीचे कूद कुन्ज की ओर लपका।

सीढ़ियों पर बहते हुए रक्त को देख देवप्रिया को ज्ञात हुआ कि किसी ने उसकी पीठ में छुरा भोंका है। अँधेरे में ओझल होती हुई काली छाया को वह पहचान न सकी। दर्द के मारे वह बेसुध हुई जारही थी।

कुन्ज में प्रवेश करते ही कुणाल ने देखा, रक्त में लथपथ देवप्रिया सीढ़ियों पर पड़ी तड़प रही है। हृदय आश्चर्य-चकित कुणाल के हृदय पर आघात था। एक क्षण के लिए वह ठिठक पड़ा। "कौन, देवप्रिया?" उसने पूछा। "तुम यहाँ कैसे?"

स्वर पहचान कर देवप्रिया ने कुणाल की ओर देखा। कुणाल ने बढ़ कर कोहनी के बल उठती हुई देवप्रिया को सहारा दिया। "मेरे प्राण लेने के लिए ही यदि आप ने बुलाया था," देवप्रिया कह रही थी, "तो मुझे अपने हाथ से मारते, मेरे देवता। आप के हाथ से मरने में भी मुझे सुख मिलता।"

"यह तुम क्या कह रही हो, देवप्रिया ? तुम्हें किसने बुलाया ?"

"तो क्या—सवे आप ने—मेरे पास—दासी नहीं भेजी थी ?

"दासी ?"

"तो क्या आप ने मुझे नहीं बुलाया ?"

"नहीं तो।"

देवप्रिया का दिल टूट गया। "आह !" उसके मुँह से निकला और अपने आराध्यदेव की गोदी में ही उसने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं।

देवप्रिया की पीठ में घुसी हुई कटार देखकर कुणाल स्तब्ध रह गया। कटार उसने धीरे से बाहर खींची। कटार अपरिचित थी; परन्तु सरल-हृदय, अबोध, देवप्रिया के इस पैशाचिक वध में छिपा हुआ रहस्य उसकी समझ में आने लगा। देवप्रिया के लिए उसकी आँखों में उमड़ते हुए आँसू सहसा थम गए और करुणा के सागर में क्रोध का बड़वानल धधक उठा। रक्तरंजित कटार लिए वह जैसे ही उठा, महादण्डपाल बीजगुप्त, कुछ सैनिकों को लिए, वहाँ आ पहुँचा। "यह क्या ! युवराज, आप !" बीजगुप्त बोल उठा। "महासेनापति प्रचण्डनाद की पुत्री, देवप्रिया ! आपने इनकी हत्या की ?"

"नहीं। मैं तो स्वयं ही इसकी पुकार सुनकर यहाँ आया था।"

इसी समय एक ओर से सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता ने प्रवेश किया। "हैं ! प्रचण्डनाद की पुत्री, देवप्रिया ! किसने इसकी हत्या की ?"

"सम्राज्ञी की जय हो !" बीजगुप्त ने अभिवादन किया। "मैं जब आया तो युवराज इस अबला के लहू से रँगी हुई कटार को लिए खड़े थे।"

"कुणाल, तुमने, ?" कृत्रिम आश्चर्य के साथ तिष्य ने पूछा। "तुमने एक स्त्री की हत्या से अपने हाथ रँगे ! तुम्हें लज्जा आनी चाहिए।"

कुणाल की देह में आग लग गई। कटार बीजगुप्त को पकड़ा तिष्य की ओर बढ़ते हुए उसने व्यंग पूर्वक कहा : "लज्जा किसे आनी चाहिए यह आप को बतलाने की आवश्यकता नहीं, सम्राज्ञी।"

"कुणाल, अपनी वासनाओं को पूरा करने के लिए तुम एक स्त्री को भी हत्या कर सकते हो, यह मैं न समझी थी। मौर्य-साम्राज्य का होने वाला सम्राट इतना नीच और दुराचारी है यह मैंने कभी नहीं सोचा था। महादण्डपाल, युवराज बंदी किए जाएँ।"

इससे पहले कि कुणाल उन षडयन्त्रियों का अपनी तलवार से सामना करे उसकी म्यान से बीजगुप्त तलवार खींच चुका था, और दूसरे ही क्षण उसने देखा कि बहुत से सशस्त्र सैनिक उसे घेरे हुए खड़े थे।

तिष्य के मुस्कुराते हुए अधरों पर प्रतिहिंसा नाच रही थी। कुणाल की आँखों से आग बरसने लगी।

उधर राजप्रासाद में हलचल मची हुई थी। पेट के दर्द ने सम्राट को काफ़ी बेचैन कर रखा था। उनका स्वास्थ्य दिन दिन गिरता ही जा रहा था। राजभवन के अनुचर-परिजन ही नहीं बल्कि पाटलिपुत्र के समस्त नागरिक और मौर्य साम्राज्य के सभी प्रान्तों के पदाधिकारी इससे अत्यन्त चिन्तित हो उठे थे। महाराज की बीमारी का कारण राजवैद्यों की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

"बड़ी पीड़ा है। आह!" महाराज कराह रहे थे। "न जाने क्या हो गया है हमारे पेट में! आह! सहन नहीं होता!"

"धैर्य रखें, म हज!" सोमदेव ने आश्वासन देते हुए कहा। "देश के ये बड़े बड़े वैद्य अपने सम्राट का दुख दूर करने के लिए कुछ भी न उठा रखेंगे। ईश्वर की दया से आप शीघ्र ही अच्छे हो जाएँगें।"

इसी समय द्वारपाल ने घोषित किया कि महासेनापति प्रचण्डनाद और महादण्डपाल बीजगुप्त सम्राट के दर्शनों के लिए बाहर खड़े हैं।

"इस समय !" महामंत्री के मुँह से साश्चर्य निकल पड़ा।

"आने दो," महाराज ने आज्ञा दी।

महासेनापति और महादंडपाल ने अन्दर आकर महाराज को अभिवादन किया।

"कैसे कष्ट किया आप लोगों ने ?" सम्राट ने मसनद के सहारे कुछ उठते हुए पूछा।

"मैं न्याय माँगने आया हूँ, महाराज," महासेनापति ने उत्तर दिया।

महाराज कुछ न समझे। "न्याय ?" उन्होंने पूछा।

"हाँ, महाराज, न्याय।"

"महासेनापति प्रचण्डनाद के साथ किसने अन्याय किया ? इतना साहस किसमें है ? कौन है वह अन्यायी ?"

"युवराज कुणाल।"

"कुणाल ?"

महामंत्री आसन से उठ खड़े हुए। "महासेनापति, आप होश में तो हैं ?" उन्होंने पूछा।

"बिलकुल होश में, महामंत्री। नाद-वंश की सेवाओं के पुरस्कार में मौर्य-वंश के कुल-दीपक ने आज मेरी सुकुमारी पुत्री का लहू भेंट किया है।"

महामंत्री की अवाक् आँखें बीजगुप्त की ओर मुड़ीं। उन्होंने पूछा : "युवराज ने देवप्रिया की हत्या की ?"

"प्रचण्डनाद !" महाराज गरज उठे; "युवराज पर कोई दोष लगाने के पहले आपको सौ बार सोच लेना चाहिए। कुणाल के समान

चरित्रवान और वीर कभी एक स्त्री के लहू से अपने हाथ नहीं रँग सकता।"

"मुझे आज प्राणों का भय नहीं है, सम्राट ! आज मैं जी खोलकर कहूँगा, पुकार-पुकार कर कहूँगा कि परम बौद्ध, न्यायप्रिय सम्राट के घर में मेरे साथ अन्याय किया गया है; और वह भी सम्राट के बेटे के हाथों——होने वाले सम्राट के हाथों।"

"महादण्डपाल," महामंत्री ने बीजगुप्त से पूछा, "क्या बात है ?"

"प्रभो ! महासेनापति सच कहते हैं। युवराज ने कुमारी देवप्रिया को चुपचाप बुला कर माधवा-कुंज में उनकी हत्या की। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा, सम्राज्ञी ने देखा।"

सम्राट मसनद पर ढुलक पड़े। महासेनापति रुँधे हुए कंठ से कह रहे थे : "सम्राज्ञी आसन्धिमित्रा की इच्छा होने पर भी जब सम्राट ने कुणाल का विवाह देवप्रिया के साथ न कर, देवी कांचनमाला के साथ कर दिया, तब मैं कुछ न बोला। मेरी बेटी ने आर्य-कन्या की तरह मन से एक बार कुणाल को अपना पति मान लेने के बाद किसी दूसरे से विवाह करना अस्वीकार किया। तपस्विनी की तरह रहती थी। सुख-भोग छोड़ा। हँसना-बोलना छोड़ा। आठ वर्षों में केवल दो ही बार वह अपने घर से बाहर निकली। एक दिन जब सम्राज्ञी का मुख-दर्शन था तब, और दूसरे आज——अपने प्राणनाथ के हाथों अपने प्राण गँवाने।"

महाराज ने महामंत्री की ओर देखा। सिर लटकाए बैठे वृद्ध महामंत्री बहुत वृद्ध प्रतीत होने लगे। महाराज ने शिथिल वाणी में कहा : "शान्त होइए, प्रचण्डनाद ! आप को न्याय मिलेगा। महादण्डपाल, कुणाल बन्दी किए जाएँ।"

"युवराज बन्दी किए जा चुके हैं, देव !" बीजगुप्त ने आदर पूर्वक

सूचित किया और सीढ़ियों से उतरती हुई सम्राज्ञी की ओर वह कनखियों से ताकने लगा।

क्रोध के आवेश में पास में पड़ी हुई सोने की झारी महाराज ने बीजगुप्त की ओर दे मारी। झारी बीजगुप्त से कुछ दूर धरती पर टकरा कर झनझना उठी। "किसकी आज्ञा से ?" महाराज ने गरज कर पूछा। "किसकी आज्ञा से ?" पति के फड़कते हुए कंधों को अपने कोमल हाथों से सहलाते हुए तिष्य ने धीरे से कहा: "मेरी आज्ञा से, प्रभो। सम्राट के न्याय के नाम पर माँ ने अपने बेटे को बन्दी किया है।" महाराज की चढ़ी हुई त्योरी उतर चली थी। कृत्रिम भावावेश के साथ महाराज के माथे को दबाते हुए उसने पूछा : "मैंने उचित ही तो किया न, महाराज ?"

तिष्य के हाथों में महाराज ने अपना सिर ढीला छोड़ दिया। "ठीक किया," उन्होंने कहा, फिर मुड़कर बोले : "महामंत्री, कल महासभा में कुणाल का न्याय होगा। पाटलिपुत्र की प्रजा में हमारी इस आज्ञा का प्रचार हो।"

पति के बन्दी होने की बात सुनकर कांचनमाला विचलित हो उठी। "उन्होंने देवप्रिया की हत्या की ?" उसने पूछा।

"हाँ, देवी," दासी ने उत्तर दिया, "युवराज को इसी अपराध में सम्राज्ञी ने बन्दी करवाया है।"

"सम्राज्ञी ने ! कुलटा, चाण्डालिनी——"

"किसने बन्दी किया है मेरे पिता जी को ?" भीतर प्रवेश करते हुए नन्हे सम्प्रति की नन्ही तलवार चमक उठी। "माँ, किसने बन्दी किया है उन्हें ? बताती क्यों नहीं ?"

"तुम्हारी दादी ने, बेटा। नई दादी ने।"

"मेरे रहते मेरे पिताजी को कोई बन्दी नहीं कर सकता। मैं दादी का सिर काट लूँगा," कहते हुए सम्प्रति रोष में द्वार की ओर बढ़ा।

"सम्प्रति! सुन तो सही। कहाँ जा रहा है? मल्लिका, इसे रोक तो ले——"

मल्लिका लपक कर कुमार को पकड़ लाई परन्तु कांचनमाला मूर्छित होकर गिर पड़ी थी।

सम्राट-पुत्र कुणाल के पकड़े जाने का समाचार सुनकर सारे नगर में एक सनसनी सी फैल गई। "आसन्धिमित्रा के दीपक का उजाला भी सम्राज्ञी से नहीं देखा गया। चाण्डालिनी!" महारानी कुरुवकी तिष्य को कोस उठीं। "युवराज पकड़े गए!" बौद्ध-मठ में बाग़ीचे के नीचे बैठे हुए भिक्षुओं में से एक कहने लगा। "कितने आश्चर्य की बात है!" "बिना अपराध के कुणाल एक चींटी को भी नहीं मारते; उनके हाथों से स्त्री की हत्या होनी असम्भव है," दूसरा बोला। तीसरे ने कहा: "सुनते हैं सम्राज्ञी ने उन्हें अपनी आँखों से हत्या करते हुए देखा।"

"मुझे तो, भाई, विश्वास नहीं होता। युवराज कभी ऐसा पाप नहीं कर सकते," नगर के चौक में इकट्ठा हुए नागरिकों में से कोई कह रहा था।

"और वह भी एक स्त्री की हत्या। एक बार सम्राट के बारे में कहा जाय तो चाहे हम मान भी लें, पर कुणाल के बारे में——कभी नहीं।"

"देखना है, सम्राट कल क्या न्याय करते हैं।"

ढिंढोरे की ध्वनि नर्तकी, रूपजीवा रंजना के कानों में भी पड़ी: "देवानांप्रिय प्रियदर्शिन महाराजाधिराज सम्राट अशोकवर्धन की जय! पाटलिपुत्र की प्रजा को सूचना दी जाती है कि कल दिन में

महासेनापति प्रचण्डनाद की पुत्री, देवप्रिया, की हत्या करने वाले अपराधी, कुणाल, का न्याय महासभा में होगा। सम्राट की आज्ञा का सब जगह प्रचार हो। सम्राट की जय !" रूपजीवा रंजना—महामंत्री सोमदेव की गुप्तचरी रंजना—के हाथों से सुरापात्र छूट गया। छोटे, बड़े सभी उपस्थित जन भौंचक्के-से उठ खड़े हुए।

सातवाँ परिच्छेद

उस रात राजमहलों में किसी ने खाना नहीं खाया। सोने के थालों में सजे हुए पकवान यों ही पड़े रह गए। पेट के दर्द से पीड़ित सम्राट अशोक के पितृ-हृदय पर गहरी चोट लगी थी। उन्हें तो अपनी दवा की भी सुधि न रही। अपनी तमाम रानियों के बीच लेटे हुए महाराज दर्द से कराह रहे थे। "मेरा कुणाल कभी ऐसा पाप नहीं कर सकता," महारानी कुरुवकी पति का सिर सहलाती हुई कह रही थी।

"तुम्हारा कुणाल हमारा भी पुत्र है, कुरुवकी; पर हम उसे अपराधी मानते हैं। कल उसका न्याय हमें करना ही होगा।"

"आपने उसे अपराध करते हुए देखा है, महाराज ?"

"हमने नहीं, किन्तु सम्राज्ञी ने देखा है।"

महारानी कुरुवकी तीक्ष्ण दृष्टि से सम्राज्ञी को ताकती हुई बोली : "सम्राज्ञी ने देखा है ! सम्राज्ञी ने उसे अपनी आँखों से देवप्रिया की हत्या करते हुए देखा है ?"

सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता महारानी कुरुवकी से चार आँखें करने का साहस न कर सकी। अपनी भटकती हुई दृष्टि छत से लटके हुए शीशे के झाड़ पर टिकाती हुई बोली : "मैंने कुणाल के हाथ में लहू टपकाती हुई कटार देखी थी। देवप्रिया तब तक कुणाल के चरणों में सदा के लिए सो चुकी थी।"

"स्वामी," महारानी कालिन्दी ने सविनय कहा, "कुणाल हम सबको बहुत प्यारा है।"

"हमारी प्रार्थना सुन लीजिए, कुणाल को छोड़ दीजिए।"

"न्याय हमारे हाथ में नहीं, राजलक्ष्मी; न्याय के आगे साधारण भिखारी से लेकर सम्राट तक को अपना सिर झुकाना पड़ता है।"

महारानी कुरुवकी की आँखों में आँसू छलछला आए। "बहन आसन्धिमित्रा के नाम का लोप हो जायगा," उसने कहा। महाराज अपना हृदय मसलने लगे। "हमें भी इसका बड़ा दुख है, कुरुवकी," महाराज ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा। "कुणाल का पिता इन सब बातों को समझता है, पर सम्राट के न्याय के आगे पिता के प्रेम का कोई मूल्य नहीं।"

"कांचन विधवा हो जाएगी।"

"हमारे सामने यह बात मत कहो," कहते हुए महाराज कराह कर उठ बैठे।

"कहूँ कैसे नहीं, स्वामी?" तीर खाई हुई बाघिन की तरह कुरुवकी गरज उठी। "कल इतनी रानियों की गोद सूनी हो जाएगी। कांचनमाला की माँग का सिन्दूर धुल जाएगा। बहन आसन्धिमित्रा की आत्मा स्वर्ग में आठ आठ आँसू बहाएगी, महाराज; और आप—आप अपना दाहिना हाथ कटा बैठेंगे!"

सम्राट मूर्छित होकर ढुलक पड़े। "पानी, पानी——" कहती हुई तिष्य एक कृत्रिम घबड़ाहट के साथ महाराज को अपने आँचल से पंखा झलने लगी, फिर उपस्थित रानियों को फटकारती हुई बोली: "मूर्छित कर डाला इन्हें.....न्याय, न्याय, न्याय.....नहीं होगा न्याय—जब तक महाराज बिलकुल अच्छे नहीं हो जाते कोई, न्याय नहीं होगा।"

"आँखों में होने वाली इस प्रलय की बरसात को रोक लो, बेटी; सती के आँसुओं में मौर्य-साम्राज्य के डूब जाने का डर है।"

"मैं नहीं रो रही, आर्य !"

"तुम नहीं रो रही, बेटी, न्याय रो रहा है। अन्याय ने ही न्याय की हत्या की," महामंत्री गंभीर होकर बोले। "झूठ ने सत्य को बन्दी किया है।"

कांचन ने महामंत्री की ओर देखा। "मैं पूछती हूँ, आर्य," उसने कहा, "क्या भगवान ने न्याय करना छोड़ दिया? क्या भगवान के महलों में भी कोई तिष्यरक्षिता आ गई है?"

"गोविन्द ! गोविन्द ! धैर्य रखो, बेटी ! अन्त में सत्य की ही जय होगी। भगवान रामचन्द्र और महारानी सीता को भी दुख के दिन देखने पड़े थे। मैं आज तुमसे कुछ लेने आया हूँ, बेटी !"

"सम्राज्ञी मेरा सब कुछ तो ले गई, आर्य !"

"पर जिसे सम्राज्ञी न ले जासकें उसे लेने आया हूँ—सम्प्रति को अपने साथ ले जाऊँगा, बेटी।"

कांचन काँप उठी। "सम्प्रति को?" उसने पूछा। "कहाँ, आर्य?"

"जहाँ तिष्यरक्षिता सम्प्रति का कोई भी अमंगल न कर सके। वह चाण्डालिनी मौर्य वंश का दीपक बुझाने आई है; परन्तु मेरे जीते जी वह ऐसा न कर पाएगी। सम्प्रति का पाटलिपुत्र में रहना ठीक नहीं। मैं उसे यहाँ से हटा देना चाहता हूँ।"

"बहुत अच्छा, आप जो उचित समझें करें। भगवान को आज ही मेरी परीक्षा लेनी थी ! मेरी आत्मा तिष्यरक्षिता के बन्दीगृह में है, और मेरे प्राण आप लिए जा रहे हैं !"

"आत्मा का नाश कोई भी नहीं कर सकता, बेटी; और तुम्हारे प्राणों की रक्षा मैं करूँगा। जब तक सोमदेव जीवित है सम्प्रति का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।"

महामंत्री की ओर से आश्वासन पाकर कांचन, कुमार सम्प्रांत के उनके साथ चलने के लिए तैयार करने लगी। मातृ-हृदय के उमड़ते हुए आँसू एक गीत का रूप लेकर बिखर पड़े.....

कुमार सम्प्रति को गोद में लिए हुए महामंत्री जैसे जैसे सिंहद्वार की ओर बढ़ रहे थे, कांचन का हृदय बैठा जा रहा था।

आठवाँ परिच्छेद

स्वर्गीया सम्राज्ञी अग्निमित्रा के महलों में, जो अब सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता के आधीन थे महाप्रतापी सम्राट अशोकवर्धन बन्दी थे—और इसका उन्हें भान तक न था। रूप के पंक में पनपने वाले पंकज अपने ऊपर मँडराने वाले भँवरों को इसी तरह वशीभूत कर लिया करते हैं। तिष्य की आज्ञानुसार राजमहल के चारों ओर सशस्त्र सैनिकों का संगीन पहरा था। अस्वस्थ होने के कारण महाराज ने राज्य की समस्त बागडोर तिष्य के हाथों में दे दी थी; और तिष्य भी इस अवसर से पूरा पूरा लाभ उठाने का संकल्प किए बैठी थी।

द्वार पर मेनका ने महारानी कुरुवकी को रोकते हुए कहा : "क्षमा करें, महारानी। सम्राज्ञी की आज्ञा है।"

"सम्राज्ञी की आज्ञा! सम्राज्ञी की यह आज्ञा है कि तू मेरे सामने आकर इस तरह खड़ी हो जाय! तेरा इतना साहस!" महारानी क्रोध से लाल हो उठी और मेनका को उसने चटाक से एक तमाचा जड़ दिया। द्वार पर खड़ी हुई सशस्त्र द्वारपालिकाएँ सहम कर पीछे हट गईं। "कह देना अपनी सम्राज्ञी से कि मौर्य महलों के नियम तोड़ने वालों को महारानी कुरुवकी दंड दिया करती है।"

"महारानी का दण्ड दासियों को डरा सकता है, बहन, सम्राज्ञी को नहीं," बाहर आती हुई तिष्यरक्षिता ने ईंट के जवाब में पत्थर मारा।

"तुम्हारी दासी ने मेरा अपमान किया है, बहन।"

"मेरी आज्ञा से ही उसने तुम्हें अन्दर आने से रोका।"

"मेरे बीमार पति से मिलने के लिए तुम मुझे नहीं रोक सकतीं।"

"मैं मौर्य साम्राज्य में हवा का चलना रोक सकती हूँ। मौर्य साम्राज्य इस समय मेरी आज्ञा से चल रहा है।"

महारानी कुरुवकी उफन पड़ी। "मौर्य साम्राज्य मौर्यों के ईश्वर की आज्ञा से चल रहा है.....रूप की पुतलियों के घमण्ड पर नहीं।"

"कुरुवकी!"

"तिष्यरक्षिता! महारानी कुरुवकी से बातें करते समय तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि तुम एक बहुत छोटे से सामन्त की कन्या हो और कल तक तुम्हें मेरे पैरों पर झुकना पड़ता था।"

तिष्य को मानो आग लग गई। "छोटी-मोटी रानियों से बात करना भी मैं अपना अपमान समझती हूँ," उसने कहा, फिर बोली: "दासी, इनसे कह दो कि यहाँ से इसी समय निकल जायँ।"

विष के घूँट की तरह यह अपमान पीती हुई महारानी कुरुवकी लौटने के लिए जैसे ही मुड़ी उसने देखा द्वार पर महामंत्री सोमदेव खड़े। "छोकरी," उन्होंने तिष्य को आह्वान करते हुए कहा, "भोले भाले कुणाल को अपने जाल में फँसा कर तू समझती है कि संसार की आँखों में धूल झोंक देगी? महाराज के रोगी होने का लाभ उठाने वाली नीच नागिन, याद रख, एक दिन सोमदेव तुझे ही बन्दी बनाकर छोड़ेगा। यह ब्राह्मण की प्रतिज्ञा है जो एक दिन पूरी होकर रहेगी।"

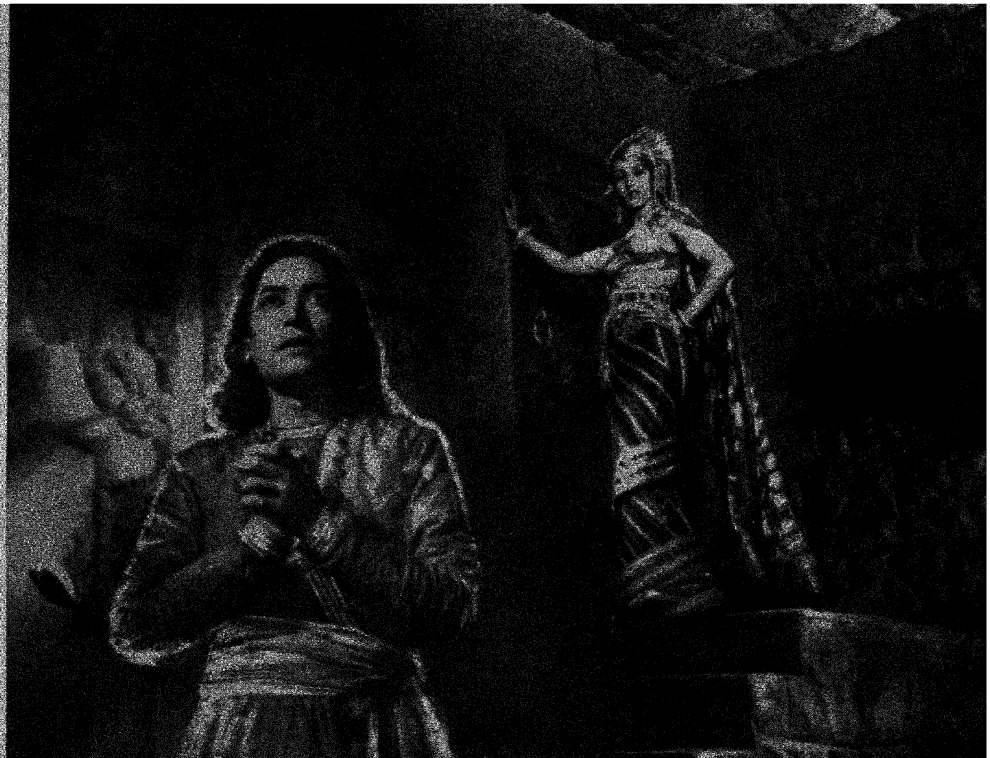
महामंत्री के इस आकस्मिक विस्फोट ने तिष्य को अवाक् कर दिया और जब वह कुछ सँभली तो उसने देखा सोमदेव और कुरुवकी दोनों ही वहाँ से प्रस्थान कर चुके हैं।

दासी मेनका को लिए तिष्यरक्षिता शयनगृह की ओर मुड़ी। सामने से सिर लटकाए राजवैद्य आरहे थे। 'सम्राट अब कैसे हैं, वैद्यराज?" उसने पूछा।



तिष्यरक्षिता :
" दासी, इनसे कहदो कि यहाँ से इसी समय निकल जाएँ। "

(शाकिर, दुर्गा खोटे, कांताकुमारी, शोभना समर्थ)



कुणाल," मैंने सीखा है कि एक वेश्या के सम्राज्ञी बन जाने पर सारा साम्राज्य वेश्यालय बन जाता है।"

(किशोर साहू, शोभना समर्थ)

"घड़ियाँ गिन रहे हैं सम्राट, कोई भी औषधि काम नहीं आती !"

"तो क्या——"

"बस अधिक से अधिक चार दिन और, मौर्यवंश का सूर्य अब अस्त हो जाएगा, सम्राज्ञी !"

वैद्यराज धीरे-धीरे लाठी टेकते हुए चल दिए। तिष्य के स्वप्नों ने गति ली। "अधिक से अधिक चार दिन और। तब तो मुझे शीघ्र ही प्रबन्ध करना होगा। सम्राट के मरने के पहले ही कुणाल, सोमदेव और कुरुवकी को मिट्टी में मिला दूँगी।"

"पर यह तुम कैसे कर सकती हो, महादेवी ?" व्यग्र होकर मेनका ने पूछा। "पाटलिपुत्र की प्रजा बिगड़ उठेगी, तुमसे विद्रोह कर उठेगी।" तिष्य मुस्कुराई। "पगली !" उसने कहा। "तिष्यरक्षिता कच्ची गोलियाँ नहीं खेलती। प्रजा बिगड़ेगी तो बीजगुप्त से—मेरे ऊपर आँच भी न आएगी।"

मेनका को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। अपनी बालसखी तिष्यरक्षिता के मुँह से वह क्या सुन रही थी ? जिस मेनका और बीजगुप्त के सहारे तिष्य ने अपनी महत्वाकांक्षा की सीढ़ी टिकाई थी, आज उन्हीं दोनों के सर्वनाश के लिए वह विषैली नागिन फुफकार रही थी। "महादेवी !" मेनका आशंकित हो पुकार उठी। "अपने स्वार्थ के लिए क्या तुम मेरे बीजगुप्त का बलिदान करोगी ?"

तिष्यरक्षिता खिलखिलाकर हँस पड़ी। "तेरा बीजगुप्त !" उसने कहा। "जिस खिलौने से तिष्यरक्षिता एक बार खेल लेती है वह सदा के लिए ही टूट जाता है, फिर उसे दूसरा कोई नहीं पा सकता।"

"नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगी, कभी नहीं। मैं अभी जाकर बीजगुप्त से तुम्हारा सारा भेद कह दूँगी।"

मेनका तेज़ी से द्वार की ओर भागने लगी। "दासी, दण्डी करो

इसे," सम्राज्ञी ने आदेश दिया। बर्छियाँ, भालों के बीच मेनका घिर गई।

"दुष्टा ! तू मेरे उपकारों का यह बदला चुका रही है !"

"ले जाओ इसे मेरे सामने से। डाल दो काल कोठरी में। खाल खिंचवा दो इसकी।" द्वारपालिकाएँ मेनका को घसीट कर ले जाने लगीं।

"राक्षसी, याद रख, मेरी आत्मा की आग एक दिन तुझे जलाकर भस्म कर देगी," चीख़-चीख़ कर मेनका कोस रही थी।

अपनी बालसखी के इस श्राप के प्रत्युत्तर में रूपगर्विता तिष्यरक्षिता, आँखों में स्वार्थ का काजल लगाए, धीरे से हँसकर शयनगृह की ओर चल पड़ी।

नौवाँ परिच्छेद

कारागार में युवराज कुणाल पिंजरे में बन्द सिंह की भाँति भावावेश में टहल रहे थे। तिष्यरक्षिता के आगमन से लेकर 'माधवी कुन्ज' की घटना तक के एक-एक दृश्य उनकी आँखों के सामने नाच रहे थे। सत्य, असत्य, दोषी, निर्दोष, स्वार्थ, निस्वार्थ, प्रेम, प्रवंचना, छल पाखण्ड—आज सब उनकी समझ में आ रहा था। सहसा कारागार का भारीभरकम द्वार चर्र-चूँ करता हुआ खुला। एक हाथ में नंगी तलवार और दूसरे में मशाल लिए प्रहरी ने प्रवेश किया।

"युवराज! मैंने और मेरे पुरखों ने आपका नमक खाया है," प्रहरी विनीत भाव से कहने लगा। "मैं आप के साथ यह अन्याय होते नहीं देख सकता। आप यहाँ से चले जाइए। मैंने द्वार खोल दिए हैं।" युवराज ने प्रहरी के कंधों पर हाथ रखे। "प्रहरी, क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारा युवराज इतिहास में स्त्री का हत्यारा कह कर पुकारा जाय? कुणाल को प्राणों का भय नहीं। मैं नहीं जाऊँगा, तुम द्वार बन्द कर लो।"

निराश हो प्रहरी ज्योंही मुड़ा, कारागार के द्वार पर सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता और महादण्डपाल बीजगुप्त को खड़ा देखकर वह मारे भय के काँप उठा।

"बीजगुप्त, अपराधी को भगाने वाले इस अपराधी को बन्दी करो, इसकी खाल खिचवाकर चील-गिद्धों को खिलवाई जाय।"

"जो आज्ञा, सम्राज्ञी।" बीजगुप्त प्रहरी को ठेलकर बाहर लेगया।

तिष्यरक्षिता ने द्वार का पट भिड़ाया और सीढ़ियों से नीचे उतरती हुई बोली : "कहिए, युवराज ! इन बन्दीगृह की दीवारों ने अभिमान को क्या सिखाया ?"

कुणाल की आँखों से आग बरसने लगी। "बहुत कुछ, सम्राज्ञी," उसने उत्तर दिया। "मैंने सीखा है कि एक वेश्या के सम्राज्ञी बन जाने पर सारा साम्राज्य वेश्यालय बन जाता है।" इसी समय मृत्युदण्ड भोगते हुए प्रहरी की अन्तिम चीत्कार कारागार के पत्थरों को भेदती हुई कुणाल के कानों में पड़ी। कुणाल ने एक घृणा भरी दृष्टि से तिष्य की ओर देखा। "मान जाओ, कुणाल," तिष्य कह रही थी।

"क्यों बार-बार चट्टान पर अपना सिर पटकने आती हो ? मैं तुम्हें लाख बार समझा चुका—माँ हो, माँ की तरह प्यार करना सीखो। मैं आज भी तुम्हारे सारे अपराध भूलकर तुम्हारे चरणों में सिर झुका दूँगा.....पर इस तरह सता कर तुम कुछ भी नहीं पाओगी। इतिहास तुम्हारे नाम पर थूकेगा। सीता और सावित्री जैसी सतियों की पवित्र भूमि में पैदा होकर तुम भारत माता के माथे पर कलंक का टीका लगा रही हो—संसार लाखों वर्षों तक तुमसे घृणा करता रहेगा, तिष्यरक्षिता!"

कुणाल को अपने बाहुपाश में घेरती हुई तिष्य बोली : "मैं उस घृणा को प्यार करूँगी।"

कुणाल ठिठक कर दूर जा खड़ा हुआ। "तुम मेरी माँ हो," उसने कहा।

"नहीं, मैंने तुम्हें जन्म नहीं दिया। पुत्र को जन्म देने पर ही स्त्री माता कहलाती है, कुणाल।"

"तब तुम पिता जी के सामने, संसार के सामने मुझे 'बेटा' क्यों कहती हो ?"

"सारा पुरुष-समाज ही स्त्री का बेटा है, कुणाल; और उसी नाते मैं तुम्हें 'बेटा' भी कह लेती हूँ।"

सूखी व्यंग हँसी हँसते हुए कुणाल ने कहा : "वासना की पुतली, अन्धी जवानी का सहारा लेकर सत्य को धोखा देने चली है ! पापी पाप को भी पुण्य के रूप में देखता है !"

"मान जाओ, कुणाल !" तिष्य कुणाल के चरणों में आ गिरी। "मुझे तरसाओ मत। मैं तुम्हें बन्दीगृह से बाहर ले चलूँगी।"

"तो तुम मुझे अपनी इच्छा पूरी करने के लिए ही बन्दीगृह में लाई थीं ! क्यों न ? सोचा होगा कि इस तरह मुझे डराकर तुम मेरे साथ मनमानी कर सकोगी, परन्तु कुणाल मोम का बना नहीं है, तिष्य—वह चट्टान की तरह अपने आदर्शों पर अटल रहेगा।"

तिष्य उठ खड़ी हुई। "मेरी बात नहीं मानोगे, कुणाल, तो सारा पाटलिपुत्र स्त्री का हत्यारा कहकर तुम्हारे मुँह पर थूकेगा और तुम्हारे पिता का न्याय देवप्रिया के हत्यारे को सूली पर चढ़ाएगा।"

"ठीक है, देवप्रिया का हत्यारा सूली पर चढ़ेगा, कुणाल नहीं.....उसने हत्या नहीं की।"

"कौन मानेगा कि कुणाल ने देवप्रिया की हत्या नहीं की ? मैं कहती हूँ, कुणाल, अब भी मान जाओ, मैं तुम्हें बचा लूँगी। महाराज बीमार हैं। राज्य की बागडोर इस समय मेरे हाथों में है। मैं तुम्हें सब कुछ दूँगी। ज्योतिषी की बात को झूठा कर, अशोक के जीते जी मैं तुम्हें सम्राट बना दूँगी।"

कुणाल के हृदय पर आघात पहुँचा। रूपवती तिष्य के असीम सौंदर्य पर आसक्त हो महाराज उसे अपना सबकुछ समर्पित कर चुके थे। वही आज विकराल नागिन बनकर महाराज को डस रही थी। वासना की प्रेरणा पाकर स्त्री किस सीमा पर पहुँच सकती है—कुणाल

को यह आज विदित हुआ। उसकी आँखों से आग बरसने लगी। "पापिनी ! हत्यारिणी ! तूने अपनी बुरी वासना पूरी करने के लिए एक निरपराध अबला की जान ली। तूने मेरे पवित्र कुल को कलंकित कर दिया।" कुणाल ने लपक कर तिष्य का गला पकड़ लिया। तिष्य की आँखें फटने लगीं। "चाण्डालिनी, आज मैं तेरे प्राण ले लूँगा..... परन्तु नहीं, तू कैसी भी हो मेरी माता के समान है—" कुणाल ने गला छोड़ दिया। "तू अपना धर्म भले ही छोड़ दे, मैं नहीं छोड़ सकता। चली जा। मैं तेरे लहू से अपने हाथ कलंकित नहीं करना चाहता।" छुटकारा पाते ही घबराई हुई तिष्य द्वार पर जा पहुँची।

"अच्छी बात है," हाँफती हुई वह बोली, "मुझसे बैर बाँधकर तूने अच्छा नहीं किया, कुणाल। मैं भी देखती हूँ कि तू कैसे जीवित रहने पाता है।"

"कुणाल पाप से डरता है, चाण्डालिनी, मरने से नहीं," कुणाल ने तिरस्कार पूर्वक कहा।

तिष्य मुस्कुराने लगी। "नारी के नैन बड़े हठीले होते हैं, कुणाल। या तो वे उलझते ही नहीं, और जब उलझते हैं तो आँखें ही निकाल लेते हैं।" तिष्य का ताली बजाना था कि महादण्डपाल बीजगुप्त ने प्रवेश किया। "आँखें निकाल लो इस दुष्ट की," सम्राज्ञी ने महादण्डपाल को आदेश दिया। "देखते क्या हो, निकाल लो आँखें।" बीजगुप्त ने ताली बजाकर इशारा किया और दो दर्जन सशस्त्र सैनिकों ने आकर कुणाल को साँकल में जकड़ कर स्तम्भ से बाँध दिया।

"निकाल लो आँखें," तिष्य ने बीजगुप्त को फिर आज्ञा दी।

"सम्राट की आज्ञा के बिना मेरी आँखें निकालने का अधिकार किसी को नहीं," कुणाल ने विरोध किया।



कुणाल : "सम्राट की आज्ञा के बिना मेरी आँखें निकालने का अधिकार किसी को नहीं।"

(किशोर साहू आदि)

(पृ० ७८)



कुरुवकी : "मुझे तुम पर अभिमान है, कुणाल ! कभी कभी आसंधि मित्रा से सौतिया जलन होती है... तू मेरी कोख से क्यों न पैदा हुआ !"

(किशोर साहू, दुर्गा खोटे)

"मुझे है। मैं मौर्य-साम्राज्य की सम्राज्ञी हूँ और दो-चार दिनों के बाद पाटलिपुत्र के सिंहासन पर मौर्यों का वंश नहीं—किन्तु तिष्यरक्षिता राज्य करेगी।"

लोहे के दो सूए लिए बीजगुप्त के अस्थिर हाथ कुणाल की ओर बढ़ने लगे।

कुणाल गरज उठा: "लोहे की इन साँकलों से जकड़े हुए शेर को परास्त करना वीरता नहीं। एक बार खोल दो, मैं तुम लोगों को चूर चूर कर दूँगा——" परन्तु सैनिकों के बर्छी, भालों ने कुणाल को टस से मस न होने दिया और बीजगुप्त ने दोनों सूए कुणाल की आँखों में भोंक दिए। कुणाल पत्ती के समान कुणाल की बड़ी बड़ी आँखों से लहू की नदियाँ उमड़ पड़ीं।

गर्विता तिष्यरक्षिता अट्टहास कर रही थी। सम्राज्ञी के प्रेम को ठुकराने का क्या परिणाम होता है, यह आज उसने युवराज को बता दिया।

दसवाँ परिच्छेद

संध्या का समय था। महारानी कुरुवकी के महलों में गुप्त रीति से सुरंग खोदी जा रही थी। कुरुवकी जानती थी कि कुणाल का इस तरह बिना न्याय के कारागार में बहुत दिन रहना उचित नहीं। इसी लिए अपने बाग़ के एक कोने से कारागार तक सुरंग खुदवाने का काम उसने कुछ दिनों से शुरू कर दिया था। मरणासन्न महाराज की मृत्यु से पहले युवराज कुणाल को कारागार के बाहर वह सुरक्षित निकाल लाना चाहती थी। सुरंग से बाहर निकलते हुए व्यक्ति को ताक कर उसने पूछा: "क्यों, महानाम, सुरंग कब तक खुद जाएगी?"

"कारागार के उत्तरी छोर तक सुरंग पहुँच चुकी है, महारानी, और ईश्वर ने चाहा तो आज आधी रात तक सुरंग ठीक युवराज की काल कोठरी में फूट जाएगी।"

महारानी ने सन्तोष की साँस ली और कहा: "धन्य! हमें तुमसे यही आशा थी, महानाम।"

शय्या पर पड़े हुए महाराज पीड़ा से कराह रहे थे। वैद्यों ने हाथ टेक दिया था। बाहर अनेक ब्राह्मण और भिक्षुक महाराज के अरिष्ट के निवारण के लिए प्रार्थना कर रहे थे। वृद्ध राजवैद्य, रामतीर्थ, महाराज के सिरहाने खड़े हुए उनके क्षीण मुख को ताक रहे थे। पास में बैठी हुई तिष्यरक्षिता चुप थी।

"क्या हम अपने अन्नदाता को भी न बचा सकेंगे?" कहता हुआ एक वैद्य रो पड़ा। वृद्ध रामतीर्थ ने कोई उत्तर न दिया। वे अपलक

महाराज को ताक रहे थे। अन्य वैद्य रामतीर्थ के इस मौन का रहस्य समझने का प्रयत्न कर रहे थे। तिष्य को भी लगा कि रामतीर्थ कुछ बोलेंगे। थोड़ी देर बाद रामतीर्थ ने निस्तब्धता भंग की। "मैं बचाऊँगा, जीवक," उन्होंने गम्भीरता पूर्वक कहा। "मुझे सम्राट का रोग अब मालूम पड़ा। यह कृमि रोग है। सम्राट अब बच जाएँगे।"

"बच जाएँगे सम्राट!"

"हाँ, सम्राज्ञी, ईश्वर की दया चाहिए। एक प्याज़ मँगवाइए।"

"प्याज़?"

"हाँ, प्याज़। प्याज़ के रस से सम्राट को अवश्य लाभ पहुँचेगा। इस रोग के लिए प्याज़ रामबाण है।"

तिष्य ने दासी की ओर देखा। दासी प्याज़ लाने चल दी। तिष्य उठकर बाहर के कमरे में आई जहाँ बीजगुप्त देर से महारानी की प्रतीक्षा में खड़ा हुआ था। तिष्य ने बीजगुप्त के बहुत पास पहुँच कर धीरे से कहा: "महादण्डपाल! पाँसा पलटता दिखाई देता है! यदि सम्राट अच्छे हो गए तो कुणाल का न्याय वे अवश्य करेंगे। कुणाल के अंधा होने की बात सुनकर सम्राट को सारा भेद मालूम हो जाएगा। सम्राट के अच्छे होने से पहले ही तुम कुणाल को मार डालो। मैं उसके उपहार में तुम्हें महामंत्री बनाऊँगी।" बीजगुप्त आनन्द से फूल उठा। "बहुत अच्छा, सम्राज्ञी!" उसने कहा। "आज ही आधी रात को कुणाल अपनी अन्तिम साँस लेगा।"

थोड़ी देर बाद वृद्ध राज-वैद्य रामतीर्थ ने सम्राज्ञी को यह शुभ समाचार सुनाया कि महाराज अब जल्दी ही अच्छे हो जाएँगे। "भगवान हम पर कृपालु हैं, सम्राज्ञी! प्याज़ अपना गुण दिखा गया।"

तिष्य ने देखा सचमुच ही महाराज की असह्य पीड़ा अब कम है और वे चुपचाप पड़े उसकी ओर प्यार से देख रहे हैं। "तिष्य," उन्होंने

कहा, "तिष्य।" "हाँ, स्वामी, कैसा लग रहा है?" स्त्री का हाथ अपने हाथ में लेते हुए महाराज ने कहा: "अब अच्छा है, प्रिये!"

आधी रात होने को आई और कुणाल की आँखों में नींद न थी। धरती पर पड़ा हुआ वह छटपटा रहा था। चारों ओर खड़ी हुई कारागार की मोटी मोटी दीवारें युवराज की इस दशा पर सिर धुन रही थीं। थोड़ी देर बाद कुणाल उठ बैठा। प्यास बुझाने के लिए पानी का मटका टटोलने लगा। सहसा उसके कानों में किसी वस्तु के गिरने की ध्वनि सुनाई दी और उसे ऐसा भास हुआ मानो उसकी कोठरी में किसीने प्रवेश किया है।

"फिर आई तू!" कुणाल बोल पड़ा। "मेरी आँखें लेकर भी तुझे चैन न मिला, कुलटा!"

"बेटा!"

आवाज़ परिचित थी पर वह तिष्य की न थी। "कौन?" उसने पूछा। "कौन?"

"बेटा!"

"माँ!"

महारानी कुरुवकी ने कुणाल को अपनी छाती से लगा लिया। "मेरे लाल, तुझे इस दशा में देखने से पहले ही मेरी आँखें क्यों न फूट गईं," कहती हुई कुरुवकी ने जैसे ही कुणाल की आँखों की ओर देखा वह अवाक् रह गई। क्रोध और घृणा से उसके होंठ फड़कने लगे।

"पापिनी तिष्यरक्षिता!" उसके मुँह से निकला।

"तुम दुखी हो रही हो, माँ? तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारे बेटे ने आँखें दे दीं पर धर्म न छोड़ा।"

कुरुवकी वात्सल्य से गद्गद हो उठी। "मुझे तुझ पर अभिमान है, कुणाल। कभी कभी आसन्धिमित्रा से सौतिया जलन होती है.....तू मेरी कोख से क्यों न पैदा हुआ!"

कारागार के प्रवेश द्वार की ओर महादण्डपाल बीजगुप्त नंगी तलवार लिए बढ़ा चला आ रहा था। सम्राट की भेंट की हुई तलवार को उन्हीं के पुत्र का लहू पिलाकर सम्राज्ञी से उपहार में महामंत्री का पद पाने का वह मधुर स्वप्न देख रहा था।

द्वारपाल ने बीजगुप्त को देखकर द्वार खोल दिए और मशाल लेकर उसे रास्ता दिखाने लगा। पत्थर की ऊँची सीढ़ियाँ दबे पाँव उतर बीजगुप्त कारागार के उस कोने की ओर बढ़ा जिधर कुणाल सोया करता था। उसने सोचा, सोए हुए युवराज पर वार करना आसान होगा.....परन्तु कुणाल वहाँ न था.....कुणाल कहीं न था। सहसा कुछ आहट पा बीजगुप्त ने देखा स्तम्भ की ओट में दीवार टूटी हुई है——दीवार तोड़ी गई है और उस पोल में से महारानी कुरुवकी कुणाल को निकाले लिए जा रही है। बीजगुप्त लपका परन्तु पोल के मुख पर खड़े हुए धनुर्धारी से "सावधान!" सुनते ही बीजगुप्त की तलवार हाथ से छूट पड़ी।

उसी रात के बीच, बौद्ध मंदिर के आगे, लाखों की भीड़ लगी हुई थी। वीर-पत्नि कांचनमाला और राजभक्त सोमदेव नगर-वासियों की आँखों पर पड़ा हुआ परदा हटा रहे थे।

"तुम्हारा सम्राट तुमसे छीन लिया गया है। तुम्हारा युवराज बिना न्याय के महीने भर से कारागार में कष्ट भोग रहा है।" इसी समय महामंत्री ने देखा महारानी कुरुवकी युवराज को साथ लिए मंच पर चली आ रही हैं। वे जानते थे महारानी कुरुवकी जिस काम का बीड़ा उठाती

हैं उसमें कभी असफल नहीं होतीं। वे इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। उपस्थित जनों का ध्यान नवागंतुकों की ओर आकर्षित करते हुए वे बोले : "यह देखो, पहचानो, यही तुम्हारे युवराज हैं जिनका तेज सदा सूर्य की तरह चमका करता था, जिनके रूप और सौंदर्य का सारे मौर्य साम्राज्य में डंका बजता था. . . . .उनकी आज यह दशा हो रही है !"

"अभी नहीं, महामंत्री," कुरुवकी कुणाल को सामने करती हुई बोलीं। "अभी आपने युवराज पर किए गए अत्याचारों को अच्छी तरह देखा ही नहीं !" कुणाल की आँखों से उसने पट्टी हटा दी। "ये रहीं कुणाल पक्षी के समान कुणाल की वे बड़ी-बड़ी सपनों भरी सुन्दर आँखें—देखिए इन्हें——"

कुणाल की आँखों पर पट्टी देख कर आश्चर्य सब को हुआ था परंतु पट्टी के नीचे फूटी आँखें होंगी यह अनुमान कोई सपने में भी नहीं कर सकता था। कांचन के मुँह से करुण चीख़ निकल पड़ी। वह लपक कर अपने अंधे पति के चरणों से जा लिपटी। महामंत्री सोमदेव और प्रजाजनों को मानो साँप सूँघ गया।

"यह क्या ! युवराज की आँखें निकाल ली गईं ! हमारे युवराज की आँखें निकाल ली गईं !" सोमदेव के मुँह से निकला।

मौर्य साम्राज्य की सबल आशा युवराज के नेत्रों से रक्त की कुछ बूँदों में बह चुकी थी। मौर्य कुल की प्रबल ज्योति सदा के लिए एक चाण्डालिन ने बुझा दी थी। भीड़ में हलचल होने लगी। आर्य सन्तानों की रगों में बहता हुआ गरम लहू खौलने लगा। महारानी कुरुवकी पूछ रही थीं :

"और यह देख कर भी क्या तुम लोग अपनी आँखें बंद किए बैठे रह सकते हो ? मैं पूछती हूँ कि पाटलिपुत्र की प्रजा अपने युवराज पर होने वाले इन राक्षसी अत्याचारों को देख कर मुर्दे की तरह मौन

रह सकती है ? विद्रोह की आग आज प्रलय-ज्वाला सी क्यों नहीं भड़क उठती जो ऐसे अत्याचारी को जला कर राख कर दे ?"

एक सामंत अपनी तलवार हवा में चमकाता हुआ गरज उठा : "आज प्रजा की तलवार का पानी सम्राट से न्याय माँगेगा । बोलो, वीर कुणाल की——"

और सबों ने एक साथ मिल कर कहा : "जय !"

ग्यारहवाँ परिच्छेद

राज-शयनागार में तिष्यरक्षिता महाराज के पैर दबा रही थी। महाराज की आँखों में नींद न थी। मछली की तरह तड़प रहे थे; पेट की पीड़ा के कारण नहीं—वह तो अब उतनी असह्य न थी—पुत्र-प्रेम के कारण। यों तो उनके अनेक पुत्र थे, पर मौर्य कुल और मौर्य-साम्राज्य का आधार-स्तंभ जो था वह अब टूटा जा रहा था। आर्यों की पवित्र भूमि, भारतवर्ष का भविष्य, अखंड भारत का भविष्य अब उन्हें अंधकारमय दीख रहा था। महाराज के भाव तिष्य ख़ूब ताड़ती थी। उन्हें सुलाने के लिए उसने हलके-हलके गुनगुनाना शुरू किया। पर इसी समय द्वारपालिका ने महादंडपाल का आगमन सूचित किया। महाराज उठ बैठे। "आने दो," उन्होंने कहा।

"युवराज बंदीगृह से भाग गए, सम्राज्ञी!" बीजगुप्त ने आते ही काँपती हुई वाणी में सूचित किया।

"भाग गए!" तिष्य ने विस्मय किया।

"कुणाल भाग गया?" महाराज ने पूछा।

"जो पुरुष स्त्री की हत्या कर सकता है उसके लिए बंदीगृह से भाग जाना भी संभव है," तिष्य बोली। "बेचारा भाग न जाता तो और क्या करता।"

महाराज ने तकिये का सहारा लिया। "अच्छा होता अपने बेटे के कलंक सुनने के पहले ही हमारे प्राण निकल जाते!"

"आप चिंता न करें, महाराज," तिष्य बोली, "मैं कुणाल का पता अवश्य लगाऊँगी। बीजगुप्त, तुम्हें ईंट का जवाब

पत्थर से देना होगा । जीता या मुर्दा जैसे भी हो कुणाल को तुरंत हमारे सामने ले आओ ।''

''जो आज्ञा, सम्राज्ञी ।'' बीजगुप्त ने संतोष की साँस ली और माथा नवा कर तुरन्त वहाँ से प्रस्थान किया ।

उधर नेत्रहीन युवराज के नेतृत्व में पाटलिपुत्र की प्रजा राज महलों की ओर नारे लगाती बढ़ी चली आ रही थी ।

तिष्यरक्षिता ने जो यह आँधी पास आते देखी तो काँप उठी । लपक कर वापस शयनागार में पहुँची । महाराज छज्जे पर खड़े हुए थे ।

''महाराज ! महाराज !''

''यह क्या हो रहा है नगर में ? यह हाहाकार कैसा ?''

तिष्य सकपकाई पर तुरन्त सम्हल गई । ''आपकी लाड़ली महारानी कुरुवकी, आपका प्यारा बेटा कुणाल और आपके बड़े विश्वासपात्र मंत्री सोमदेव आरहे हैं,'' उसने कहा । ''भोली-भाली प्रजा को बहका कर विद्रोह कराया गया है । आपकी जान लेकर कुणाल सिंहासन पर बैठने आरहा है ।''

''कुणाल ने विद्रोह किया है ? हमसे विद्रोह ?'' महाराज ने चादर कंधे पर फेंकी और बाहर जाने लगे । तिष्य ने उन्हें रोकना चाहा

''महाराज ! महाराज ! आप कहाँ जा रहे हैं ! आप न जाइए, महाराज ! प्रजा ने विद्रोह किया है !''

महाराज की त्योरी चढ़ चुकी थी । तिष्य को सामने से दूर धकेलते हुए उन्होंने कहा : ''हम प्रजा के विद्रोह से नहीं डरते ।''

धरती पर गिरी हुई तिष्य ने, कायर तिष्य ने देखा क्षण भर पहले के दुर्बल, पीड़ित और रुग्ण सम्राट अब एक घायल सिंह की तरह भयानक रूप धारण किए विद्रोही प्रजा का सामना करने बढ़े चले जारहे

हैं। अपने को अकेले सुरक्षित न समझ कर वह उठी और महाराज के पीछे होली।

कुणाल को लिए भीड़ राजमहल पर आन पहुँची। भयभीत हो बीजगुप्त ने द्वारपालों को द्वार भेड़ देने की आज्ञा दी। बढ़ती हुई भीड़ के मुँह पर द्वार बन्द कर दिए गए। जनता महलों को घेरे सम्राट को पुकारने लगी।

सहसा द्वार खुल पड़ा और महाराज अशोक प्रकट हुए। तिष्य ने उन्हें फिर रोकना चाहा। "नहीं, मैं आपको नहीं जाने दूँगी," उसने अनुरोध किया। "प्रजा आपके प्राण लेने के लिए पागल हो उठी है।"

"परे हटो, तिष्यरक्षिता। हम आज उस माई के लाल को देखना चाहते हैं जिसमें अशोक से विद्रोह करने का सामर्थ्य है।"

"सम्राट की जय हो!" महामंत्री ने कहा।

"हम ऐसे हारे ही कब थे जो लाखों की भीड़ लेकर तुम हमारी जय मनाने आए हो, महामंत्री?" महाराज ने पूछा।

"महाराज, युवराज कुणाल बहुत दिनों से न्याय की प्रतीक्षा कर रहे हैं! इतने दिनों तक बिना न्याय किए हुए किसी को बंदी रखना अन्याय है। मैं न्याय माँगने आया हूँ आपसे।"

"मेरे सुहाग के सिंदूर में आग लगाई गई है, प्रभो!" काँचन ने रोकर कहा। "मुझे भी न्याय चाहिए।"

"मैं भी आई हूँ, महाराज," महारानी कुरुवकी कहने लगीं। "माँ ने अपने दूध में बेटे को विष घोल कर पिलाया है। माँ जैसे पवित्र शब्द के साथ एक स्त्री ने अन्याय किया है। मैं देश की सारी माताओं की ओर से न्याय माँग रही हूँ।"

"न्याय! हमें न्याय चाहिए," जनता पुकारने लगी।

"न्याय ! आज सारे संसार को हमसे न्याय चाहिए ! जैसे हमने जीवन भर अन्याय ही किया हो। और मेरे बड़े आज्ञाकारी वीर पुत्र तुम क्यों चुप हो ? आँखों पर पट्टी क्यों बाँध रखी है ?"

"यह बताने के लिए, महाराज," कुणाल ने उत्तर दिया, "कि मौर्यवंश का पवित्र न्याय अंधा होगया है ! उसे अब पाप और पुण्य भी नहीं सूझ रहा।"

तिष्यरक्षिता का आशंकित हृदय काँप रहा था। "क्या किसी और समय न्याय की भूख लेकर नहीं आ सकते थे आप लोग ?" उसने भीड़ से पूछा परंतु उत्तर वह कुणाल से चाहती थी। "सम्राट इतने बीमार और दुर्बल होरहे हैं, भूखे भेड़िये की तरह यों टूटते हुए लाज नहीं आती आप लोगों को !"

महाराज ने तिष्य के कंधे का सहारा लिया।

"माँ के मंदिर को आरती से न्याय की चिंता सुलगाने वाले को जब अपनी काली करतूतों पर लाज नहीं आती तब हमें ही क्यों लाज आए," कुणाल ने उत्तर दिया।

"जब सम्राट अच्छे हो जाएँगे तब न्याय होगा," सम्राज्ञी ने दृढ़ता-पूर्वक कहा। समय की आड़ में वह सहारा ढूँढ रही थी।

"न्याय इसी समय होगा," कुरुवकी बोली। "जीवन, मरण विधाता के हाथ में है। सम्राट को यदि—" कुरुवकी का गला भर आया, आँखें डबडबा आईं—"मौत भी आएगी तो न्याय के सिंहासन पर—न्याय करते हुए।"

सम्राट को बात जँच गई। "महारानी कुरुवकी ठीक कहती हैं, तिष्य," उन्होंने कहा। "महामंत्री, महासभा की घोषणा की जाय। हम आज ही, अभी, इसी समय कुणाल का न्याय करेंगे।"

और तब समस्त उपस्थित जनों ने न्याय-प्रिय महाराज अशोक का एक स्वर से जयघोष किया।

बारहवाँ परिच्छेद

थोड़ी ही देर में सभाभवन पाटलिपुत्र निवासियों से खचाखच भर गया। क्या स्त्री क्या पुरुष, क्या बच्चे—आज सभी अपने प्रिय युवराज की मुक्ति की आशा लेकर पधारे हैं। धनहीन और धनवान, शूरवीर और कायर, ज्ञानी और अज्ञानी—आज सभी महाप्रतापी, महान्यायी सम्राट अशोक का न्याय देखने के लिए उपस्थित हैं। अस्वस्थ और चिंतामग्न महाराज सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके साथ, बाईं ओर, सम्राज्ञी भी हैं। दासियाँ चँवर और पंखे झल रही हैं। सिंहासन की ओर, रेशम के झिलमिल परदे के पीछे समस्त रानियाँ और राजकुमारियाँ बैठी हुई हैं और दूसरी ओर राजकुमारों के आसन लगे हुए हैं। सामने आसनों पर छोटे-बड़े राजकर्मचारी और नगर के प्रतिष्ठितगण बैठे हैं। सिंहासन के नीचे, बाईं ओर के आसन पर महामंत्री उपस्थित हैं परंतु दाईं ओर का आसन सूना है क्योंकि इसका अधिकारी बंदी बना सभाभवन के बीच खड़ा हुआ है।

"हत्यारा मौर्य साम्राज्य का युवराज है," कुणाल की ओर हाथ दिखा कर महासेनापति प्रचंडनाद कह रहे हैं। "मेरी निर्दोष बेटी के लहू से अपनी बुरी वासनाओं की प्यास बुझाने वाला यह हत्यारा ही एक दिन मौर्यों के इस पवित्र सिंहासन पर बैठेगा! मुझे पूछना है, सम्राट, सबका न्याय करने वाले सम्राट और उनके पुत्र के लिए क्या कोई भी नियम नहीं? कहीं भी न्याय नहीं?"

"न्याय है, प्रचंडनाद," सम्राट ने आश्वासन दिलाया।

"सत्य और न्याय के आगे सम्राट तो क्या ईश्वर को भी अपना सिर झुकाना पड़ता है।" फिर कुणाल को सम्बोधित करते हुए बोले : "अपराधी——"

"बंदी हूँ, महाराज; अपराधी नहीं," कुणाल ने तुरंत ही उत्तर दिया ! "मुझे बार-बार अपराधी कह कर आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं, सम्राट !"

"कुणाल !" त्योरी चढ़ाकर सम्राट गरज उठे । 'अशोक को अन्यायी बताने से पहले तुम्हें सत्य का प्रमाण देना होगा । क्या तुमने देवप्रिया की हत्या नहीं की ?"

"नहीं, सम्राट ।"

"तुमने उसे 'माधवी कुंज' में नहीं बुलाया ?"

"नहीं, सम्राट ।"

तीसरा प्रश्न सम्राज्ञी ने पूछा । "क्या अपनी बुरी वासना शांत करने के लिए तुमने देवप्रिया को——"

"सम्राट !" अपमान, क्रोध और वेदना से कुणाल पुकार उठा। पापियों के दिल काँपने लगे । "कुणाल के ऊपर यह सबसे बड़ा आरोप है जिसे वह कभी भी सहन नहीं कर सकता । पराई स्त्रियों को मैंने सदा माँ या बहन समझा है—इसे तो सम्राज्ञी भी अच्छी प्रकार जानती हैं ।"

सम्राट ने सम्राज्ञी की ओर देखा। सम्राज्ञी की आँखें लपलपाती हुई झुक गईं । महामंत्री सोमदेव अपनी घनी और सफ़ेद मूँछों के भीतर मुस्कुरा रहे थे ।

"तब तुम 'माधवी कुंज' में गए क्यों थे ?" सम्राट ने प्रश्न किया ।

"किसी के बुलाने पर ।"

"देवप्रिया के बुलाने पर ?" चपल तिष्य ने चट से दूसरा प्रश्न किया।

"नहीं," दृढ़ कुणाल ने उत्तर दिया; "जिसने देवप्रिया को बुलाया, उसके बुलाने पर।"

तिष्य ने एक उड़ती हुई दृष्टि सामने महादण्डपाल बीजगुप्त पर डाली। बीजगुप्त का माथा पसीने से चमक रहा था। तिष्य का हृदय भी काँपने लगा। महाराज अशोक के शयनागार में बैठे-बैठे समस्त मौर्य साम्राज्य पर राज्य करने वाली, युवराज कुणाल जैसे वीर को क्षण भर में बन्दी बनाने वाली, महाप्रतापी सम्राट अशोक के वध की योजना करने वाली, अपने को सबसे अधिक शक्तिशाली समझने वाली यह नागिन तिष्यरक्षिता आज, इस सभाभवन में सिंहासन पर बैठी हुई, सहसा अपने को बिलकुल निराधार, निराश्रित और निर्बल पा रही है।

पति के दैदीप्यमान व्यक्तित्व को देख-देख उसकी आँखें चौंधिया रही हैं।

सम्राट पूछ रहे थे : "किसने बुलाया तुम्हें और देवप्रिया को ?"

महासेनापति प्रचंडनाद और समस्त उपस्थित जन टकटकी बाँधे बन्दी के मुँह की ओर देखने लगे।

"क्षमा करें, सम्राट; यदि मैं उसका नाम लूँगा तो सम्राट उसे सहन न कर सकेंगे।"

"नाम बताओ, कुणाल—चाहे वह हम ही क्यों न हों;" न्याय-देवता ने आग्रह किया।

कांचनमाला और कुरुवकी ने तिष्य की ओर देखा। मौर्य-साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता काँप रही थी।

"मैं नाम नहीं बताना चाहता, सम्राट," कुणाल ने उत्तर दिया।

महाराज बौखला गए। "तब जो कुछ भी तुम कह रहे हो वह झूठ है। तुम ही अपराधी हो। तुम्हीं ने देवप्रिया की हत्या की," उन्होंने कहा। "याद रखो, उसकी हत्या करने के अपराध में तुम्हें सूली पर चढ़ाया जा सकता है।"

सम्राज्ञी ने संतोष की साँस ली परन्तु महासभा के लोगों को सम्राट के वचन नहीं भाए। "नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता, सम्राट। युवराज अपराधी नहीं हैं," भीड़ से आवाज़ आई।

"हमारे न्याय में किसी को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं," सम्राट क्रोधित होकर बोले।

महारानी कुरुवकी रेशमी झिलमिल परदे के पीछे उठ कर खड़ी हुईं। "हम आपकी प्रजा हैं, प्रभो," वे बोलीं। "हमें अपने सम्राट से सच्ची बात कहने का अधिकार है। युवराज अपराधी नहीं हैं।"

महाराज निरुत्तर होगए। "तो फिर अपराधी है कौन?" उन्होंने पूछा।

"महादण्डपाल, सम्राट रोगी और दुर्बल हैं," तिष्य बीजगुप्त को आज्ञा दे रही थी। "प्रजा का जो मनुष्य सम्राट के न्याय में व्यर्थ विरोध करे उसे निकाल दिया जाए।"

बीजगुप्त उठा और विरोधियों की ओर बढ़ने लगा परन्तु महामंत्री के तीव्र शब्द वज्र की तरह बीजगुप्त और विरोधियों के बीच आन गिरे। "पुत्रों को अपने पिता से अलग नहीं किया जा सकता, सम्राज्ञी," उन्होंने कहा। बीजगुप्त के पाँव धरती में गड़ गए।

"हम सब अन्त तक यहीं रहेंगे और यही कहेंगे कि युवराज अपराधी नहीं हैं," एक ने दृढ़तापूर्वक कहा।

तिष्य को अवसर मिला। "बीजगुप्त, निकाल दो उसे बाहर," उसने आज्ञा दी। वह समझती थी कि उसकी क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो

जाने के भय से अब कोई चीं-पटाख़ भी न करेगा; ठण्डा, गरम सब लोगों के हलक़ में उतार दिया जाएगा।

परन्तु तिष्य को धोखा हुआ। प्रचण्डनाद और बीजगुप्त को छोड़ कर समस्त मंत्रिमंडल विरोध करता हुआ उठ खड़ा हुआ। भवन में अशांति फैल गई।

"हम सब निकल जाएँगे। हम सब पाटलिपुत्र छोड़ कर चले जाएँगे," लोगों ने एक स्वर से कहा।

क्रोध से लाल हो सम्राट उठ खड़े हुए। "चले जाओ," उन्होंने कहा। "सम्राट का न्याय धमकियाँ नहीं सुनता। जब तक पाटलिपुत्र में मौर्य सिंहासन रहेगा, जब तक उस सिंहासन पर अशोक रहेगा, तब तक मौर्य साम्राज्य में न्याय रहेगा। कुणाल, अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए तुम्हें प्रमाण देना ही होगा।"

प्रमाण के लिए सम्राट पिताका यह अनुरोध, कुणालने देखा, उसके चरित्र पर, उसके वीरत्व पर प्रहार था। आँखों में सूए भेदे जाने के समय उसे उतनी वेदना न हुई होगी जितनी कि आज हो रही थी। मौर्य सिंहासन न्याय के नाम पर कुणाल से, युवराज से, प्रमाण माँग रहा था!

"दूँगा, सम्राट। एक नहीं, गिन-गिन कर प्रमाण दूँगा," कुणाल ने तड़प कर कहा। "परन्तु उसके पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि आज पाटलिपुत्र के सम्राट और पाटलिपुत्र की प्रजा के आगे कुणाल के वचन का मोल क्या है? मेरे चरित्र और योग्यता की अच्छी तरह परख कर लेने के बाद ही सम्राट ने पाटलिपुत्र की प्रजा से पूछकर मुझे युवराज बनाया था। मैं पूछता हूँ, कसौटी पर खरा उतरा हुआ सोना भी कभी खोटा हो सकता है जो महासभा में आज बार-बार मेरी बात का अविश्वास किया जा रहा है? मैं पूछता हूँ, क्या आज

पाटलिपुत्र की प्रजा को अपने युवराज पर विश्वास नहीं रहा ? मैं पूछता हूँ, सम्राट को अपने युवराज की बात पर विश्वास न करने का क्या अधिकार है ? न्याय अपने ही आसन पर आज क्यों बार बार कुल्हाड़ी मार रहा है, सम्राट ?"

उद्विग्न कुणाल के इस करुण वक्तव्य से सभी के हृदय पिघल गए। रियादी प्रचंडनाद तक की आँखें छलछला उठीं। और महाराज के घुटनों में सहसा झुनझुनी भर आई। वे सहारा लेकर पुनः सिंहासन पर बैठ गए।

कोई कह रहा था : "युवराज ठीक कहते हैं।"

"युवराज की बात का विश्वास न करना सम्राट की बात का विश्वास न करने के बराबर है," दूसरे की राय थी।

"आज का युवराज कल का सम्राट है, अन्नदाता," तीसरा बोला।

वृद्ध महामंत्री अपनी चादर के आँचल से आँखों के छोर पर आन लटके आँसुओं के दो कण पोंछते हुए उठे। "न्याय को युवराज कुणाल की बात माननी ही होगी, सम्राट। राजनीति यही कहती है," उन्होंने कहा।

तिष्यरक्षिता ने कनखियों से पास बैठे हुए महाराज की ओर देखा। वे सहसा बहुत ही अस्वस्थ प्रतीत होने लगे। महाराज कह रहे थे : "हम कुणाल की बात का अविश्वास नहीं करते, महामंत्री. . . . .परन्तु न्याय को प्रमाण चाहिए।"

उत्तर कुणाल ने दिया। "प्रमाण देकर छूटना ही वीर कुणाल के लिए अपमान की बात है, सम्राट ! इससे तो मृत्यु ही अच्छी !"

फ़रियादी प्रचंडनाद से अब और न देखा गया। वह भी सैनिक था, वीर था। एक वीर के शब्दों की अवहेलना, एक वीर का अनादर होते वह अब और न सह सका। "बस, बहुत हुआ, सम्राट। मुझे

न्याय मिल गया," उसने हाथ जोड़ कर कहा। "वीर कुणाल जैसा तेजस्वी और सत्यवादी कभी भी मेरी बेटी का हत्यारा नहीं हो सकता ऐसा मेरी आत्मा को दृढ़ विश्वास होगया। मैं आपसे युवराज को छोड़ देने की प्रार्थना करता हूँ, सम्राट।"

सम्राट अशोक की आँखें, अपने प्रिय पुत्र के लिए लोगों के दुखते हुए दिल देखकर, भर आईं। प्रजा-बल के आगे आज राज-सिंहासन डाँवा-डोल होगया। सम्राट का न्याय युवराज के प्रति प्रजा की असीम भक्ति से टकरा कर विच्छिन्न होगया। वीर पिता अपने प्रिय वीर पुत्र को हृदय से लिपटा लेने के लिए अधीर हो रहा था। परंतु एक विषैली नागिन, सम्राज्ञी के रूप में, पिता और पुत्र के बीच फुंकारें भरती आन उपस्थित हुई।

"नहीं, महासेनापति," तिष्यरक्षिता कह रही थी, "बंदी नहीं छोड़ा जा सकता। इतिहास कहेगा कि सम्राट ने अपने पुत्र-प्रेम के कारण न्याय छोड़ अन्याय किया।"

उत्तर में महामंत्री को फिर खड़ा होना पड़ा। "चिंता न करें, सम्राज्ञी," वे बोले। "इतिहास आज ही के दिन तो सम्राट अशोक के न्याय को देखेगा और मानेगा।"

महारानी कुरुवकी भी बोल पड़ीं: "जिसने कुमारी देवप्रिया की हत्या करवाई है, जिसने युवराज को इतना कष्ट दिया है, उनका इतना अपमान किया है, सम्राट उसी का न्याय करने के लिए आज यहाँ पधारे हैं।"

"मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, सम्राट, कि युवराज कुणाल को आदर के साथ मुक्त कर दीजिए," महामंत्री ने विनयपूर्वक कहा।

सभामंडप समर्थनार्थ 'छोड़ दीजिए, युवराज को छोड़ दीजिए,' की तीव्र पुकार से गूँज उठा। महाराज न सम्हल सके, अपने को न

सम्हाल सके। महाप्रतापी सम्राट अशोक, अपनी निष्कपट और सरल चित्त प्रजा के अपने प्रिय पुत्र के प्रति इस असीम अनुराग और भक्ति को देखकर, अपने को न सम्हाल सके। उनका हृदय उनके नेत्रों से अश्रु-धारा के रूप में बह निकला। प्रेम से गद्‌गद् होकर वे बोले : "धन्य है पाटलिपुत्र की प्रजा ! और धन्य है उनका युवराज ! भारत का होने वाला सम्राट मौर्य सिंहासन पर बैठने से पहले ही मौर्य साम्राज्य की प्रजा के हृदय-सिंहासन पर बैठ चुका है यह देख कर हमें तुमसे ईर्षा होती है, कुणाल। हम तुम्हें आदर के साथ मुक्त करते हैं।"

बंदी की मुक्ति सुन कर लोगों के प्रेमाश्रु उमड़ आए। सभाभवन करतल ध्वनि और 'सम्राट की जय,' 'युवराज की जय,' 'न्याय की जय' से गूँजने लगा। महारानी कुरुवकी ने सस्नेह कांचनमाला को हृदय से लगा लिया। तिष्य का मन बैठने लगा।

"उचित वस्त्राभूषण पहन कर अपने आसन पर विराजिए, युवराज," महाराज ने कुणाल को आदेश दिया और लोगों से बोले : "न्याय युवराज के आने तक प्रतीक्षा करेगा।"

परंतु कुणाल वहाँ से न हटा। पिता के न्याय को आज वह कसौटी पर रखना चाहता था।

"नहीं, सम्राट, अब नहीं," उसने उत्तर दिया। "स्वर्गीय सम्राट चंद्रगुप्त के परम पवित्र सिंहासन पर अभी भी पाप और अन्याय का बोझ लदा हुआ है। मौर्य वंश और मौर्य सिंहासन के कल्याण के लिए प्रजा-जन के रूप में कुणाल अब न्याय माँग रहा है, प्रभो !"

महाराज की समझ में बात बराबर न आई। कुणाल की आँखों पर बँधी हुई पट्टी का अभिप्राय वे न समझ पा रहे थे, अतएव उन्होंने कहा : "हम पूरा न्याय करेंगे, कुणाल; परंतु तुम्हारी आँखों की यह पट्टी——"

महारानी कुरुवकी को अब अवसर मिला। चट वे उठ खड़ी हुईं और पति की बात काट कर बोलीं : "खुलेगी, महाराज। समय आने पर, न्याय की आँखें खोलने के लिए, कुणाल अपनी आँखों की पट्टी भी खोलेगा।"

दक्ष और अनुभवी महाराज भाँप गए कि अवश्य ही आँखों पर बँधी हुई पट्टी में कोई रहस्य है। इसी समय उनकी दृष्टि सभाभवन के एक सिरे पर रची जारही लकड़ियों पर गई। उन्होंने देखा कुछ कर्मचारी लकड़ियों की चिता तैयार कर रहे हैं। महाराज ने महामंत्री की ओर देखा।

"महामंत्री, सभाभवन में ये लकड़ियाँ क्यों लाई गई हैं? आग क्यों जलाई जा रही है?"

"आज यज्ञ होगा, महाराज! मौर्य सिंहासन आज अग्नि परीक्षा देगा," सोमदेव ने उत्तर दिया; फिर तिष्य को लक्ष्य करके वे बोले : "क्यों, सम्राज्ञी, इतिहास को सम्राट का न्याय दिखाने के लिए आपके इस सेवक ने प्रबंध तो ठीक किया है न? कोई कमी तो नहीं रह गई?"

महाराज तिष्य को घूर रहे थे। समस्त जन तिष्य की ओर टकटकी बाँधे देख रहे थे। तिष्य का हृदय काँप रहा था, उसकी देह में पसीना छूट रहा था, परंतु अभी भी उसके ताम्बूल-रंजित अधरों पर अवहेलनात्मक मुस्कान थिरक रही थी।

"ठीक है, महामंत्री। न्याय होने दीजिए," वह बोली।

"जो आज्ञा, सम्राज्ञी।" फिर सोमदेव महाराज को सम्बोधन कर बोले : "सम्राट, आज न्याय का त्योहार है। मौर्य सिंहासन पर बैठे आज आपको चौंतीस वर्ष हुए। आपने आज तक ऐसा न्याय नहीं किया होगा, सम्राट! आज आपके न्याय की दुहाई बजेगी!"

"हम सदा अपने कर्तव्य का ध्यान रखते हैं, महामंत्री। अब देव-प्रिया का हत्यारा हमारे सामने लाया जाय।"

कौटिल्य के शिष्य, सोमदेव, को बस महाराज से इसी उत्तर की प्रतीक्षा थी।

"अपराधी का नाम बताइए, युवराज," उन्होंने कुणाल से कहा।

कौतूहलवश सब लोग कुणाल की ओर देखने लगे। महादंडपाल बीजगुप्त और तिष्यरक्षिता की आपस में आँखें चार हुईं। बीजगुप्त का मुँह खुला हुआ था और उसका निचला जबड़ा ऐसे हिल रहा था मानो वह बीजगुप्त का कोई अंग ही नहीं। कांचनमाला और कुरुवकी तिष्य को ताक रही थीं। तिष्यरक्षिता ने मुँह फेर लिया और कनखियों से पति की ओर देखा।

"कुणाल, अपराधी का नाम बताओ," महाराज कह रहे थे।

कुणाल के अधरों में हलचल हुई। "महादंडपाल बीजगुप्त," उसने उत्तर दिया।

सुन कर लोग चकित रह गए।

"बीजगुप्त! इस दुष्ट ने मेरी प्यारी बेटी की हत्या की!" महा-सेनापति प्रचण्डनाद के रुँधे गले से भर्राई हुई ध्वनि निकली।

"महादंडपाल बीजगुप्त को उनके पद से हटा कर अपराधी के रूप में हमारे सामने लाया जाय," सम्राट ने आज्ञा दी।

तिष्यरक्षिता अवश्य ही कुशल अभिनेत्री भी थी। "बीजगुप्त ने देवप्रिया की हत्या की! आश्चर्य!" उसने कहा।

तिष्य की यह भावभंगिमा कांचनमाला के लिए असह्य होगई। "आश्चर्य अभी नहीं, सम्राज्ञी," उसने तीव्र वाणी में उत्तर दिया, "बड़ी बड़ी बातें होंगी आज, जिसे सुनकर सारा संसार आश्चर्य करेगा।"

सम्राट ने पुत्र-वधू कांचनमाला की ओर देखा। कांचन के नेत्रों से आग बरस रही थी। वह चाहती थी कि इस आग से सम्राज्ञी को झुलस दे, फूँक कर राख कर दे। स्त्रियों के नेत्रों की मूक भाषा पढ़ने में सम्राट प्रवीण थे। उनकी बुद्धि उनके मन पर पड़े हुए आवरण को अब धीरे-धीरे हटा रही थी। उन पर अब यह भेद खुलने लगा था कि कुमारी देवप्रिया के वध के षडयंत्र से उनकी प्रिय, विश्वासपात्री तिष्य का सम्बन्ध अवश्य ही है।

"तुमने देवप्रिया की हत्या की?" सम्राट ने बीजगुप्त से पूछा।

"नहीं, अन्नदाता। मैं देवप्रिया की हत्या क्यों करता? मेरा अपराध यही है, सम्राट, कि मैंने युवराज को देवप्रिया की हत्या करते पकड़ा।"

बीजगुप्त के सिर पर काल मँडरा रहा था नहीं तो वह सम्राज्ञी को बचाने के लिए इस प्रकार बार-बार झूठ न बोलता। महामंत्री सोमदेव ने वास्तविक घटना कुणाल, कांचनमाला और महारानी कुरुवकी के मुँह से पहले ही सुन ली थी और उस सत्य के साक्षी-पुरावे का समस्त प्रबंध वे किए बैठे थे। इस कार्य में उन्हें अपने गुप्तचरों से बड़ी सहायता मिली थी। पाटलिपुत्र में ही नहीं वरन् समस्त मौर्य साम्राज्य में, स्वर्गीय सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य का अनुकरण करते हुए, सम्राट अशोक ने भी गुप्तचरों का जाल फैला रखा था जिससे राजधानी में बैठे-बैठे ही उन्हें राज्य के हर प्रांत का और राजधानी के हर घर का समाचार मिला करता था। कहाँ क्या गड़बड़ हो रही है, किसे क्या दुख है इसका पता सम्राट को निरंतर लगा करता था; और लोगों के दुखों का निवारण करने के लिए वे सदैव तत्पर रहा करते थे। कैसा विचित्र विधान है कि समस्त साम्राज्य के प्रपंचों के जानकार को अपने ही घर की बातों का पता न हो! सम्राट के घर का पता उनसे अधिक उनके एकनिष्ठ प्रधान, चाणक्य के शिष्य, वृद्ध सोमदेव को था। तभी तो उनके

आदेशानुसार वीर कुणाल की ओर से साक्षियों का ताँता बँध गया। यह बात सम्राट के समक्ष सिद्ध करदी गई कि युवराज को फाँसने के लिए बीजगुप्त ने वह जाल बिछाया था; और जिस कटार ने कुमारी देवप्रिया का वध किया वह भी युवराज की न थी बल्कि बीजगुप्त की ही थी। जिस लोहार ने वह कटार ढाली थी उसने वह तिथि तक बतला दी जब बीजगुप्त ने उससे वह कटार मोल ली थी। देवप्रिया के वध के बाद लहूलहान कटार तो बीजगुप्त सम्राट के सामने रख आया परंतु उसकी म्यान, मदिरा में मस्त हो, रंजना के घर छोड़ आया था।

"मदिरा पीकर पापी का पाप अपने आप बोल उठा, अन्नदाता," रंजना भरी सभा में कुणाल की ओर से साक्षी दे रही थी। "महादंडपाल बीजगुप्त की कटार ने ही कुमारी देवप्रिया की जान ली। यह रही उसकी म्यान।"

रंजना ने अपनी कमर में खोंसी हुई बीजगुप्त वाली वह म्यान निकाल कर महामंत्री के पास पड़े हुए थाल में रखदी। पास ही उस थाल में पुरावे के लिए लाई हुई वह कटार भी थी। महामंत्री ने कटार भी उठाई और म्यान भी और उपस्थित जनों ने देखा एक ही झटके में वह कटार म्यान के अन्दर थी। बीजगुप्त दहाड़ मार कर चिल्ला पड़ा। "सम्राज्ञी, मेरी रक्षा कीजिए!" उसने याचना की।

महामंत्री कह रहे थे: "रूपजीवा रंजना मेरी गुप्तचरी भी है यह तुम नहीं जानते थे, बीजगुप्त, नहीं तो कभी इससे प्रेम करने नहीं जाते।"

"सम्राज्ञी, बचाइए! सम्राज्ञी, पत्थर क्यों हो गईं आप?" बीजगुप्त पुकार रहा था। उसने देखा सामने सम्राट के साथ सिंहासन पर अचल बैठी सम्राज्ञी के मुँह पर तिरस्कार की हलकी सी एक लहर दौड़ गई और फिर सम्राज्ञी ने मुँह मोड़ लिया। बीजगुप्त के हृदय में प्रतिशोध

की ज्वाला धधक उठी। वह तो डूब ही रहा था, उसने सोचा उस पापिनी को क्यों बचने दे, उसे भी क्यों न साथ में ले डूबे जिसने उसे इस भँवर की ओर ला धकेला है। "सम्राज्ञी, बचाइए! आपही के कहने से मैंने देवप्रिया की हत्या की, आपही के कहने से मैंने युवराज को फाँसा और——"

परन्तु तिष्य को भँवर में खींचना अब बीजगुप्त के वश की बात न थी। सम्राज्ञी अपराधी बीजगुप्त के हाथों की पहुँच से परे थी।

"बीजगुप्त! सम्राज्ञी का अपमान मौर्य सिंहासन का अपमान है!" सम्राज्ञी ने उसके वक्तव्य पर आपत्ति की।

सम्राज्ञी का यह अपमान सम्राट से भी देखा न गया।

"ले जाओ इसे सामने से। टुकड़े-टुकड़े कर डालो इसके शरीर के," उन्होंने आज्ञा दे दी। चार सैनिक अपराधी बीजगुप्त को सभाभवन से बाहर घसीटे लिए जाने लगे।

बीजगुप्त को महाराज ने प्राणदण्ड तो दे दिया परंतु वे अब कुमारी देवप्रिया की हत्या का अभिप्राय जानने के लिए उत्सुक हैं यह बात महामंत्री भली भाँति जानते थे। इसीलिए उन्होंने कहा:

"मैं आपको थोड़ी देर और कष्ट देना चाहता हूँ, सम्राट।"

"आप और क्या कहना चाहते हैं, महामंत्री?"

"कहना कुछ नहीं चाहता, सम्राट; दिखाना चाहता हूँ," कहते हुए सोमदेव युवराज कुणाल की ओर बढ़ ही रहे थे कि महारानी कुरुवकी ने उन्हें रोक दिया।

"ठहरिए, महामंत्री," वे बोलीं। "माँ के ममता भरे हाथों को आज यह कठोर काम करने दीजिए।" महारानी अपने स्थान से नीचे उतर आईं और कुणाल की ओर बढ़ती हुई सम्राट को सम्बोधन करने लगीं: "सम्राट, लाखों के हृदयों को शीतल करने वाली कुणाल की बड़ी-

बड़ी आँखें आपको अभी तक याद तो होंगी ! कुणाल पक्षी के समान वे सुन्दर, सपनों भरी आँखें आज——" महारानी ने कुणाल की आँखों से पट्टी खोली——"आज आपको देख न सकेंगी, प्रभो!"

सम्राट को मानो सहस्र बिच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिया। उनकी परम प्रिया स्वर्गीया असंधिमित्रा की एक मात्र निशानी, लाड़ले कुणाल, को आज नेत्रविहीन देखकर सम्राट के बाह्य आवरण के अन्दर रमता हुआ पितृ-हृदय असह्य वेदना से तड़प कर पुकार उठा :

"कुणाल !.....कुणाल !.....तुम्हारी यह दुर्दशा किसने की ?"

"ये अंधी आँखें अपराधी हैं, महाराज," कुणाल ने उत्तर दिया। "इन्हीं के कारण सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता को कुमारी देवप्रिया की हत्या करानी पड़ी।"

"सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता !" महासेनापति प्रचण्डनाद ने आश्चर्य प्रकट किया।

"सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता ने हमारे प्रिय युवराज की आँखें फोड़ी हैं ?" सभामंडप में उपस्थित हर जनसाधारण, हर सैनिक, हर राजकर्मचारी यही पूछ रहा था।

क्रोधावेश के कारण बौद्ध सम्राट अशोक का रूप सहसा अत्यंत प्रचंड हो उठा। छिटकी हुई उनकी घनी भौंहें तनकर कमान हो गईं और नेत्रों में रक्त जम गया।

"तिष्य, तुमने !" सम्राट ने सम्राज्ञी को झकझोर डाला। सिंहासन के एक कोने में भयभीत तिष्य सिमटी जा रही थी।

"मुझे सम्राट के विद्रोही पुत्र को दंड देने के लिए यह कठोर काम करना पड़ा, महाराज। मैंने आप की भलाई के लिए ही यह सब कुछ——"

महासेनापति बोल उठे : "तो देवप्रिया की हत्या भी आपने सम्राट की भलाई के लिए ही करवाई थी। क्यों ?"

"नहीं," उत्तर में कांचनमाला बोली;"बल्कि अपने पाप की ज्वाला बुझाने के लिए। सम्राट, मौर्यवंश की पुत्र-वधु आज आपसे आँचल पसार कर न्याय की भीख माँग रही है। एक स्त्री ने दूसरी स्त्री के पति को उससे छीनना चाहा था और जब वह उसे छीन न सकी तो उसकी आँखें ही छीन लीं ! पिता, सम्राट, मुझे न्याय चाहिए।"

"तिष्यरक्षिता !" सम्राज्ञी को सिंहासन से अपनी ओर उन्मत्त की नाईं खींचते हुए सम्राट गरज उठे।

"इसमें सम्राज्ञी का कोई दोष नहीं, सम्राट," कुणाल कह रहा था। इन आँखों ने उनका यौवन और उमंगों से भरा चंचल मन चुरा लिया था; इसलिए इन्हें दंड मिलना ही चाहिए था।"

"यह झूठ है," तिष्य ने रही सही समस्त शक्ति बटोर कर कुणाल की बात का खंडन करना चाहा परंतु सामने खड़ी हुई महारानी कुरुवकी बोल पड़ीः "झूठ है या सच यह तो आप का मन जानता होगा, सम्राज्ञी. . . . .या आप की प्रिय दासी, मेनका !"

सम्राट ने कुरुवकी की आँखों में देखा और फिर तिष्य की आँखों में।

"मेनका कहाँ है ? कहाँ है मेनका ?" वे गरज उठे।

"वह अपने देश चली गई," तिष्य बोली।

"हाँ; सम्राज्ञी ने तो उसे दूर देश भेज दिया था परंतु चाणक्य का शिष्य सोमदेव उसे वहाँ से भी ले आया, सम्राज्ञी," महामंत्री ने कहा, और सभाभवन के एक विशेष द्वार की ओर संकेत कर कहने लगे : "यह आ रही है, सम्राट।" दो सैनिक एक कंकाल को लिए समीप आ रहे थे। "कभी इस कंकाल का नाम मेनका था, प्रभो ! सम्राज्ञी की यह बड़ी प्यारी सखी थी। किंतु आज सम्राज्ञी का प्रेम

साँप, बिच्छू और गिद्ध बनकर इसके रूप को चाट गया है ! सुना, सम्राट की सोहागरात के अवसर पर इसी मेनका ने सोहाग का गीत गाया था !''

अभी महामंत्री समाप्त भी न कर पाए थे कि कुणाल बोल पड़ा : ''और बुद्ध गया के पवित्र तीर्थ में जब माँ अपने बेटे से वेश्या की तरह प्रेम की भीख माँगने गई थी तब भी यही मेनका——''

बस, महाराज के तन-बदन में आग लग चुकी थी। ''कुलटा ! दुराचारिणी !'' उन्होंने तिष्य का गला दबाते हुए कहा। ''हमारे प्रेम का तूने यह बदला दिया ! पैरों की धूल से उठाकर तुझे हमने अपने मुकुट का मणि बनाकर रखा ! वेश्या ! तूने सारी स्त्री जाति पर कलंक लगा दिया !'' तिष्य की कोख में महाराज ने कस कर लात मारी। तिष्य चीख उठी और मौर्य-सिंहासन की सीढ़ियों पर ढुलकती हुई धम्म से नीचे को आ गिरी।

''शांत होइए, पिता जी ! जो होना था सो तो अब हो ही गया,'' कुणाल अपने सम्राट पिता का क्रोध दूर करने की चेष्टा कर रहा था।

सभाभवन में सन्नाटा छा गया।

''बेटा !'' सम्राट बोले, ''इस स्त्री ने हमारी छाती पर लात मारी है, फिर हमें कैसे शांति मिल सकती है ? इसने युग युग तक के लिए हमारे मुख पर कालिख पोत दी है। इस युवावस्था में भी रूप का जादू तुम पर अपना प्रभाव न डाल सका और—और हम बूढ़े होकर भी रूप और वासना के दास बने रहे। इतनी रानियों के होते हुए—महारानी कुरुवकी जैसी देवी के होते हुए—हमने बुढ़ापे में एक और ब्याह किया ! इस राक्षसी को सम्राज्ञी बनाया ! इसके ऊपर इतना विश्वास किया !'' तिष्य सीढ़ियों पर हाथों के बल सरकती हुई महाराज के पैरों में आ पहुँची थी और महाराज के चरणों पर उसने अपना माथा

टिका दिया था। "नागिन ! पिशाचनी !" पैरों से तिष्य को ठेलते हुए सम्राट बोले। "ले जाओ इसे हमारे सामने से। बोटी-बोटी उड़ा दो इसकी।"

महासेनापति प्रचंडनाद उठ कर आगे बढ़े और तिष्य के केश पकड़ कर उसे नीचे घसीट लाए।

महामंत्री इसी क्षण की प्रतीक्षा में थे। उन्होंने सम्राट से निवेदन किया : "दूर कहाँ भेज रहे हैं इसे, सम्राट। सामने यह ज्वाला जल रही है। न्याय के यज्ञ में पूर्णाहुति दीजिए, प्रभो। गुरु चाणक्य ने यही दंड बताया है, अन्नदाता।"

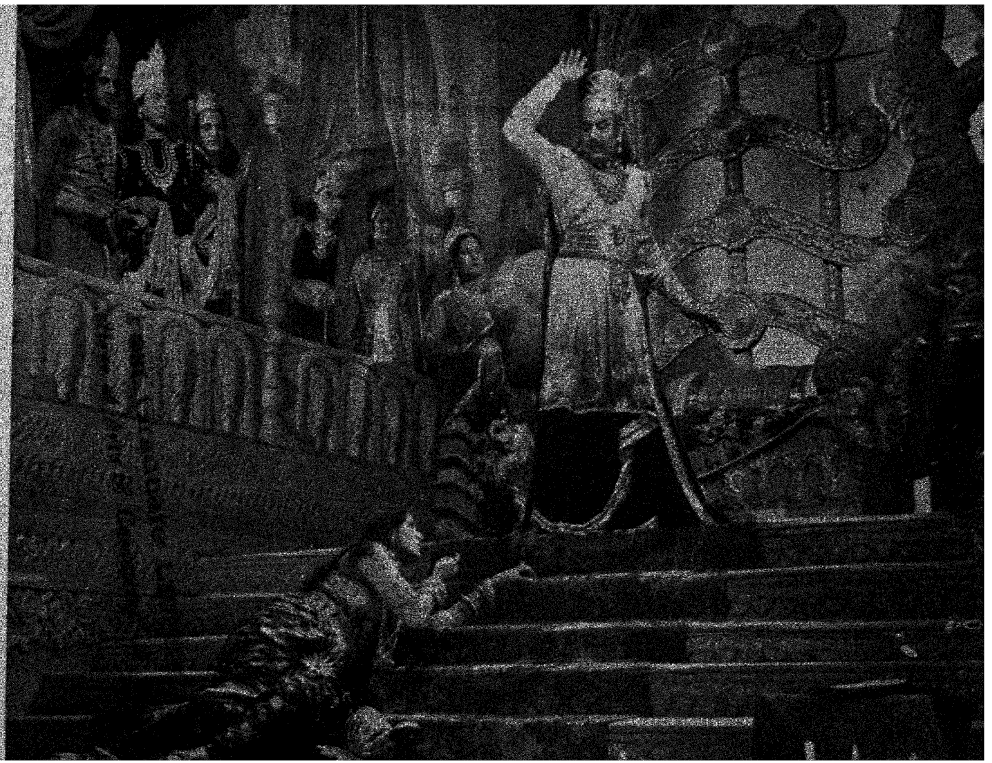
"महामंत्री !——" तिष्य सिहर कर चीख उठी।

"ठीक है," सम्राट ने महामंत्री का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। "पाप को जलाकर भस्म कर दो। यही इसके लिए उचित दंड है।" "नहीं, महाराज, नहीं," तिष्य बिलखने लगी। "भगवान !..... कुणाल !.....कुणाल ! मेरी रक्षा करो ! मुझे बचाओ न, बेटा !" वह हाथ छुड़ा कर कुणाल के चरणों से आ लिपटी।

परंतु कुणाल न पसीजा; बोला : "'बेटा' ! 'बेटा' कह कर यदि तुमने मेरी आँखें माँगी होतीं तो मैं इन्हें तुम्हारे चरणों पर लाख बार निछावर कर देता। यही शब्द यदि तुमने मुझे पहले कहा होता तो आज ससार तुम्हारी पूजा करता, तिष्यरक्षिता। माता शब्द की पवित्रता पर तुमने कीचड़ उछाली है। तुम्हारा मरना ही उचित है। तुम्हारी मृत्यु से संसार को शिक्षा मिलेगी।"

"ले जाओ इसे। झोंक दो आग में," सिंहासन के सामने खड़े हुए सम्राट ने फिर आज्ञा दी।

महासेनापति ने तिष्य को धधकती हुई आग की ओर घसीटना आरंभ किया। साथ ही चार सैनिक नंगी तलवारें लिए तिष्य को घेरे



अशोक : "ले जाओ इसे हमारे सामने से। बोटी बोटी उड़ादो इसकी।"

(शोभना समर्थ," मुबारक आदि)

पृ० १०६



चित्र " वीर कुणाल " बनाने वाले साहू और उनके सहकारी

सामने की पंक्ति में बाईं ओर से : किशोर साहू (निर्माता, लेखक, निर्देशक, नायक), अनंत प्रभू (प्रबंध कर्ता), चंदू (चित्रा लेखक)। दूसरी पंक्ति में बाईं ओरसे : रमेश गुप्ता (सहायक निर्देशक), शोभना समर्थ (नायिका), सुशील साहू (सहायक निर्देशक), सतीश साहू (सहायक निर्देशक)। पीछे वाली पंक्ति में बाईं ओरसे चौथे, श्रीवास्तव (सहायक प्रबंध कर्ता), छटे, नरसिंहराव (ध्वनि आलेखक) आदि.

हुए थे कि कहीं वह भाग न निकले। उपस्थित जन कुलटा तिष्य को धिक्कार रहे थे, उस पर थू थू कर रहे थे। 'सम्राट की जय,' 'वीर कुणाल की जय,' और 'न्याय की जय' के नारे उठ रहे थे।

अग्निकुंड से उठती हुई लपटें देख कर तिष्य पागल की नाईं करने लगी। कहीं भाग निकलने का मार्ग खोजने लगी। पर वह चारों ओर से नंगी तलवारों से घिरी हुई थी। तलवारों ने अन्त में उसे अग्निकुंड में ठेल ही दिया और एक आर्त चीत्कार के साथ तिष्यरक्षिता सदा के लिए मौन हो गई।

ऊपर सिंहासन के सामने खड़े हुए सम्राट बुढ़ापे की अपनी प्रेमिका का यह अन्त देख रहे थे। अपने प्रेम पर, अपनी वासना पर और स्वयं अपने पर होती हुई अपने न्याय की यह जीत वे आँखें फाड़े देख रहे थे।

"टूट गया!" वे बोले। "माया के सपनों का जाल टूट गया! अस्त हो गया वासना का सूर्य! अज्ञान ने अन्धा किया था हमें और आँखें तुम्हें गँवानी पड़ीं, कुणाल!.....इतनी बड़ी मूर्खता करने वाले अज्ञानी को चन्द्रगुप्त मौर्य के इस पवित्र सिंहासन पर बैठने का कोई अधिकार नहीं। आओ, पुत्र; मौर्य सिंहासन पर वीर कुणाल को देखने का सौभाग्य अपने दुखी और अपराधी पिता को प्रदान करो।"

सम्राट के वचन सुनकर लोग मारे आनन्द के उछल पड़े। जिधर उधर 'सम्राट अशोक' और 'सम्राट कुणाल' का जय घोष होने लगा। परन्तु कुणाल से संकेत पाकर सभाभवन फिर से शांत हो गया।

"मौर्य सिंहासन की जय हो!" कुणाल बोल रहा था। "न्याय के हाथों एक बार बन्दी होने वाला कुणाल देवताओं के प्रिय सम्राट अशोक के इस पवित्र सिंहासन पर बैठने का अधिकारी अब नहीं रहा, पिता जी।"

"नहीं कुणाल; तुम हर तरह से इस सिंहासन पर बैठने योग्य हो। अब तुम ही मौर्य सिंहासन के भाग्य विधाता हो," सम्राट ने आग्रह किया।

कुणाल मुस्कराया। "अन्धा भाग्य विधाता!" उसने कहा। "महाराज, अंधी आँखों के कारण ही भारत में एक बार महाभारत हुआ था, इसे न भूलिए। अँधे पुत्र के हाथों साम्राज्य सौंप कर प्रजा को अत्याचारों के मुँह में न डालिए। भारत के कोटि कोटि मनुष्यों के सुख शांति और स्वतंत्रता के लिए यदि कुणाल जैसे सैकड़ों युवराज और मौर्यों जैसे सैकड़ों वंशों का बलिदान भी देना पड़े तो वह भी कम होगा।"

कुणाल के ये सराहनीय वचन सुन कर सभा मंडप 'वीर कुणाल की जय' से बारम्बार गूंजने लगा। कांचनमाला ने आकर पति का हाथ अपने हाथ में ले लिया। अँधे कुणाल की कांचन ही तो अब एक मात्र लाठी थी। कुणाल चलने को हुआ तो महामंत्री और महारानी कुरुवकी ने उसे पुकार कर रोकना चाहा।

"कुणाल! कुणाल!! कुणाल!!!" सम्राट ने पुकारा।

कुणाल मुड़ा। "बस अब और कुछ न कहें, पिताजी," उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। "इतने से जीवन में बहुत कुछ देख लिया मैंने। अब मैं बौद्ध संघ की शरण में जाना चाहता हूँ।" फिर वह नागरिकों को सम्बोधन कर बोला: "बिदा लेते समय कुणाल अपने प्रजा भाइयों को अपनी सौगंद दिलाता है—मेरे बाद मौर्य साम्राज्य और मौर्य सम्राट की रक्षा और सेवा का भार आप को लेना पड़ेगा।.....प्रणाम, पिता जी।" कुणाल और कांचन ने सम्राट को प्रणाम किया। सम्राट रो रहे थे। फिर उन्होंने महामंत्री और सारी माताओं को प्रणाम किया। माता कुरुवकी से कुणाल बोला: "प्रणाम, माता। संसार सदा माता के चरणों की पूजा करेगा। कांचन——"

कांचन ने पति का हाथ थामा और बोली : "चलिए, नाथ।"

वृद्ध सम्राट अशोक शिथिल होकर सिंहासन पर धम्म से बैठ गए और उनकी डबडबाई आँखें, टकटकी बाँधे, प्रिय कुणाल और कांचन-माला को तब तक देखती रहीं जब तक वे दोनों सभाभवन से ओझल न हो गए।

समाप्त